ISSN : 2321-3922
जुलाई – 2019
BIHHIN05394
वर्ष – 5 अंक–17

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई–2019

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी
कुन्दन अमिताभ

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–5, अंक–17
जुलाई – 2019

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–5, अंक–17
जुलाई – 2019

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर– 2019 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

कृपया अपनी रचनाएँ
kurtidev -010
में ही भेजें

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
विचारधारा	सुसंभाव्य: एक अन्वेषण	मनोरंजन सहाय सक्सेना	06
समीक्षा	मैं ही हूँ भावना	डॉ. विमलचन्द्र शुक्ल	07
समीक्षा	पिता–छाँव वट वृक्ष की	सोनिया वर्मा	08
समीक्षा	जनवादी चेतना और वैचारिक संघर्ष	अशोक सिंह	09
आलेख	समकालीन कविता का निहितार्थ	प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय	11
समीक्षा	प्रेमचंद की कहानी 'दो भाई'	अरुण कुमार वर्मा	13
ग़ज़लें.	ग़ज़लें	अनिरुद्ध सिन्हा	14
समीक्षा	मंगेतर का मोबाइल : संघर्ष और संवेदना	रामयतन यादव	15
कविता	ढूँढ ही लेगा, सही परिभाषा	राजेन्द्र परदेशी	15
लघुशोध	कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र	डॉ कल्पना दीक्षित	16
ग़ज़लें	ग़ज़लें	अभिनव अरुण	18
झलक	धर्मवीर भारती के जीवन और साहित्य	डॉ. डी. एन. प्रसाद	19
आलेख	विवेकानन्द : अध्यात्म के अनूठे ध्वजवाहक	राकेश भारतीय	21
आलेख	हिन्दी सिनेमा का समाज पर प्रभाव	डॉ. संजित खांडेकर	23
आलेख	नेपाल में हिन्दी का इतिहास: स्थिति और उसका भविष्य	आलोक भारती	25
कविता	मनुहार	रविशंकर सिंह	26
आलेख	जलियाँवाला बाग	डॉ. अमर सिंह बधान	27
गीत	रूप मनोरम छायी	अश्विनी प्रजावंशी	28
आलेख	भाषा का महत्त्व	आचार्य बलवन्त	29
आलेख	कितने रावण मारे	ज्ञानचंद मर्मज्ञ	31
कविताएँ	निश्छल कोश, अटल सत्य	मीनाक्षी छाजेड़	32
कहानी	पंचायत	धर्मेन्द्र कुसुम	33
कहानी	मंगलसूत्र	नरेन्द्र किशोर सिन्हा	35
कहानी	निजात	हरिप्रकाश राठी	37
कहानी	देवयानी	ए.के. सिन्हा	38
कहानी	किरायेदार	अभय कुमार भारती	40
लघुकथा	पहले खुद सुधरे	नीरज त्यागी	42
कहानी	लातिन, अमेरिकी कहानी	सुशांत सुप्रिय	43
कविता	ठग	तनुजा उप्रेति	44
परख	अंगजनपद के सांस्कृतिक महाप्राण	दयानन्द जायसवाल	45
जीवनी	राजमहल का लाल	डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा	46
व्यंग्य	लॉबी की ओर	डॉ. अनुज प्रभात	47
गीत	पीया मिलन, श्याम गए परदेश	लक्ष्मी नारायण मधुलक्ष्मी	47
गीत	बरसन लागे मेघ, शब्द,	डॉ. मंजरी पांडेय	48
कविता	मैं हूँ आज का भिखारी	कृष्ण मोहन सिन्हा 'किसलय'	48
कहानी	सीतिया माय ...अंगिका परिशिष्ट...	डॉ. विद्या रानी	49
ग़ज़ल	ग़ज़ल	साथी सुरेश	50
काव्यविधा	महर्षि मेंहीं गाथा	हीरा प्रसाद 'हरेन्द्र'	51
गीत	गीत, रस्सा–कस्सी	–राम शर्मा 'अनल', अनिल शंकर झा	52
कविता	सिलसिला, गांधीजी के गाय	अनिरुद्ध प्रसाद विमल, प्राणमोहन 'प्राण'	52

मंदिर–मस्जिद

तुम बनाओगे राम मंदिर
हम हजारों कत्ल हो गये
तुम बनाओगे बाबरी मस्जिद
हम हजारों कत्ल हो गये
परिवार दर परिवर
वे कत्ल हो गये
जिन्होंने न मंदिर की बात की थी
और न मस्जिद की
वे तो पुस्त दर पुस्त जी रहे थे
मात्र रोटी और एक अदद मकान की आशा में
अपने खून और पसीने में,
उन्हें तो बात करनी थी
इस लोकतंत्र से
बस अपने जीने के अधिकार की।

डॉ. गिरिजाशंकर मोदी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

सृष्टि के आरंभ से अबतक मनुष्य के परिष्कृत हृदय ने उन्नत कोटि के साहित्य की रचना की है और ऐसे साहित्य ने ही करोड़ों लोगों के जीवन की दिशा बदलने का काम किया है। ऐसे ही साहित्य समाज के शाश्वत साहित्य की संज्ञा दी है। किन्तु आज ऐसा लगता है कि विज्ञान और तकनीक के इस युग में साहित्य समाज से दूर होता जा रहा है। समाज को साहित्य से कोई सरोकार नहीं रह गया है, तो क्या साहित्य को समाज की चिंता है?हजारों वर्ष पहले तो चिंता थी; दुनिया में आज भी वैदिक ऋचाओं की गूंज है, उपनिषदों की कथाएँ उसमें निहित सत्य सभी को लुभाता है, उसे सुनने को लोग आज भी ललायित रहते हैं। सूर और मीरा के भजनों को सुनकर लोग झूमने लगता है।

आज हमें यह सोचना होगा कि आखिर क्यों आज का साहित्य जुगनू के समान चमक दिखाकर चला जाता है?क्या कारण है कि समाज बदलता है, फिर भी कुछ बातें नहीं बदलतीं। आज हम उन ऋषि–मुनियों की भाषा नहीं बोलते, फिर भी उनका वाक्य हमें रीझता है और हमारे काम आता है। लेकिन क्यों आज का साहित्य ठहरा हुआ दिखाई देता है। साहित्यकार अपनी वैयक्तिक अनुभूति को समाज, राष्ट्र या विश्वानुभूति में परिवर्तित क्यों नहीं कर पा रहे हैं, जबकि समाज हर क्षण साहित्यकार की ओर आशाभरी निगाहों से देख रहा है कि कब उसके साहित्य में अनुभूति की तीव्रता और भावना की प्राबल्यता मिलेगी। कब साहित्यकार विचारों को शिल्पगत निर्धारित तत्त्वों की सीमा में आबद्ध होकर हमसे इजहार करेंगे। साहित्य सृजन में हमारी भावना की बारीकियों और संवेदना को कब महसूस करेंगे। कब अपनी गंभीर साधना के चिंतन–मनन को भाषा, व्याकरण, शब्द–ज्ञान, रचना कौशल, शिल्प, शैली, बिम्ब विधान, मनोवैज्ञानिक, संश्लिष्ट योजनानुरूप पात्र, संवाद, घटना, वस्तु विन्यास, सूक्ष्मता, गहनता, केन्द्रीयता, चारित्रिकता और तीक्ष्णता में आबद्ध साहित्य हमें देंगे।

साहित्य शब्द का प्रयोग सातवीं–आठवीं शताब्दी से मिलता है। इससे पूर्व साहित्य शब्द के लिए काव्य शब्द का प्रयोग होता था। भाषा विज्ञान का यह नियम है कि जब एक ही अर्थ में दो शब्दों का प्रयोग होता है, तो उनमें से एक अर्थ संकुचित या परिवर्तित होता है। जब एक ही अर्थ में साहित्य और काव्य शब्द का प्रयोग होने लगा, तो धीरे–धीरे काव्य शब्द का अर्थ संकुचित होने लगा। यही कारण है कि साहित्य शब्द को व्यापक अर्थ में लिया जाने लगा। अब साहित्य का तात्पर्य कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा अर्थात् गद्य और पद्य आदि इन सभी विधाओं से है।

डॉ. नगेन्द्र का कहना है–''महान् लेखक सामाजिक जीवन का केवल वर्णन नहीं करते, लेखक का दृष्टिकोण स्वभावतः अधिक समीक्षात्मक होता है। उसके लिए ऐसे प्रसंगों का आविष्कार करना जरूरी हो जाता है, जिनमें उसके पात्र स्वयं अपनी नियति की खोज कर सके। समाज केवल संस्थाओं का साधनमात्र नहीं है। उसमें एक ओर जहाँ व्यक्ति के आचार–विचार के आदर्शों एवं प्रतिमानों की व्यवस्था है, वहीं दूसरी ओर ऐसे सुविचारित मूल्यों का अंतर्भाव भी है, जिन्हें सामाजिक स्तर पर सिद्ध करने के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना होता है। साहित्य में सामाजिक प्रतिमानों और प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब रहता है, इसमें संदेह नहीं, किन्तु उसमें लेखक के अभिमत मूल्यों का प्रतिफल भी उतना ही अनिवार्य है और यह कहना गलत न होगा कि मूल्यों के स्तर पर ही साहित्य समाजशास्त्रीय अध्ययन को शक्ति अर्थवत्ता प्रदान कर सकता है।'' साहित्य का सर्जक समाज का एक व्यक्ति होता है, चाहे वह कवि हो या लेखक। वह समाज में प्रचलित परंपराएँ, रूढ़ियाँ, आचार–विचार तथा व्यवहार से बँधा होता है। यह उसकी सीमाएँ ही नहीं, आदत में समाहित हो जाता है। साहित्य को हम दो धाराओं में विभाजित कर सकते हैं–अंतर्मुखी और बहिर्मुखी। अंतर्मुखी धारा में मनुष्य के अंतर्द्वन्द्व, आत्मचिंतन, मनोवैज्ञानिक, उहापोह, भावनाओं का महत्त्व एवं दूसरी बहिर्मुखी धारा में वन, पर्वत, नदी, नाले, दृश्यमान, गोचर प्रकृति और उसके साथ राष्ट्रीय आंदोलन, किसान जमींदारों का संघर्ष, मजदूरों की हड़तालें, दंगे आदि का चित्रण।

मानव सभ्यता की विकास यात्रा में पहले मनुष्य की सामाजिकता मुखरित हुई होगी और आविष्कारों की शृंखला में विविध क्षेत्रीय ज्ञान–विज्ञान, विभिन्न कलाएँ, चित्र, संगीत और साहित्य आदि की जरूरत महसूस की गई होगी।

आज वर्तमान समय में छोटी–छोटी वस्तु पर वैश्वीकरण का प्रभाव दिखाई देता है, जिससे साहित्यकार अछूता नहीं रह सकता। प्राचीनकालीन, मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य से हटकर आज साहित्य में एक तरह बाजारवादी संस्कृति पर लिखा जाने लगा है। इस दौर में भाषा में बदलाव, जीवन मूल्यों में बदलाव और साहित्य में बदलाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। साहित्य में कवियों ने, उपन्यासकारों ने, कथाकारों ने समीक्षकों ने और अन्य विधा के लेखकों ने बस बाजारवादी संस्कृति के दर्शन अपनी कृतियों में कराए हैं, जिसका स्पष्ट परिणाम आज साहित्य की गहरायी में दिखाई दे रहा है। सत्य यह भी है कि साहित्य में निरंतर विकास होता रहा है। साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है। इसलिए ध्यातव्य है कि हमारी अभिव्यक्ति कैसी हो; क्योंकि उसका स्वरूप व्यापक है। आज किसी के द्वारा लिखित दस्तावेज को साहित्य नाम से अभिहित किया जा रहा है। परन्तु साहित्य से आज की यही अभिप्रेत है कि साहित्य वह है, जो समाज परिवर्तन में मौलिक भूमिका अदा कर सके और साहित्यकार इस समाज की एक ईकाई होता है। वह रोज के जीवन में घटित घटनाओं को पहचान कर समाज के सामने रखता है। वह समाज की किसी घटना से मुँह नहीं फेर सकता।

हिन्दी के विविध आंदोलन और साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं अन्य सामाजिक गतिविधियों को सक्रिय करने में पत्रिका की अग्रणी भूमिका रहती है। आपकी भी यह 'सुसंभाव्य' साहित्यिक पत्रिका समाज में राष्ट्रीय चेतना के जागरण,उसमें समसामयिक ज्वलंत समस्याओं के प्रति जागरुकता लाने तथा सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों को गतिमान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

विचारधारा

सुसंभाव्य : एक अन्वेषण

मनोरंजन सहाय सक्सेना
टोक रोड जयपुर
राजस्थान–302015

संपादकीय किसी पत्रिका की आत्मा होता है। वह पाठक को पत्रिका से जोड़ता है और उसे पत्रिका की प्रकाशित सामग्री की गरिमा का आभास कराकर उसे पढ़ने का प्रेरित करता है।

सुसंभाव्य के अप्रैल 2019 के अंक का संपादकीय, जिसे संस्थापक–सम्पादक ने 'पुरोवाक्' शीर्षक से प्रस्तुत किया है, वह एक शिक्षाविद् साहित्यकार का काफी मनन–चिंतन के उपरांत प्रतिपादित विचार प्रवाह है।

उनके कथन मानवीय समाज के विकास के लिए अन्वेषण की प्रवृत्ति मूलभूत और अनिवार्य आवश्यकता है; क्योंकि शोध ही संस्कृति के प्रतिमानों की पुष्टि करता है, पर विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि वह वस्तुतः अन्वेषण प्रवृत्ति की अनिवार्यता के साथ वह जिज्ञासा की प्रवृत्ति की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं; क्योंकि जिज्ञासा ही मानव को अन्वेषण के लिए प्रेरित करती है। मानव सभ्यता का विकास और उसका इतिहास इसका साक्षी है।

आदि मानव सभ्यता के युग में जब मानव प्रकृति प्रदत्त भोजन–वनों में उत्पन्न फलादि और उत्तरकाल में वन्य पशुओं के आखेट के बाद उनका उसी रूप में भक्षण करके जठराग्नि शांत करते हुए जीवनयापन कर रहा था, तब किसी प्राकृतिक घटना के कारण दावाग्नि में भुने परिवर्तित स्वाद के मांस भक्षण के उपरांत उत्पन्न जिज्ञासा–यह पहले कच्चे मांस की अपेक्षा अधिक स्वादयुक्त क्यों हैं, ने ही मानव को अग्नि उत्पन्न करने और उसके संरक्षण से और उसके बाद भोजन के स्वाद की जिज्ञासा ने मानव सभ्यता को पाकशास्त्र की रचना हेतु प्रेरित किया, जिसके कारण ही लखनऊ के मशहूर कबाब और हैदराबाद की बिरयानी तो कोलकाता के रसगुल्ले भारतीय से सामाजिक सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक बन सकें।

जिज्ञासा के कारण अन्वेषण के लिए प्रेरित है और इसी जिज्ञासा के कारण मानव सभ्यता तथा संस्कृति आदि मानव युग से निरंतर विकास की ओर अग्रसर होते हुए आज अंतरिक्ष में विचरण कर रही है।

इसी क्रम में लेखक का कथन है–'क्योंकि शोध ही संस्कृति के प्रतिमानों की पुष्टि करता है और उन्हें नयी व्याख्या प्रदान करता है'–यह कथन एकदम सत्य तो है, किन्तु शोध में प्रतिमानों के प्रति स्थापित मान्यताओं के विपरीत चिंतन भी इसको एक शाश्वत रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

लेखक का कथन–'साहित्य में मूल्यों तथा तथ्यों की खोज समाज और साहित्य की नयी दृढ़ता प्रदान करता है और समाज में आये बदलाव और विवादों का समाधान प्रस्तुत करता है' एक शिक्षाविद साहित्यिक व्यक्ति का तथ्यपरक कथन है, मगर यहाँ भी स्थापित मान्यताओं के विपरीत चिंतन की जिज्ञासा को श्रेय दिया जाना समीचीन प्रतीत होता है, जिनसे कथित विवाद के रूप में एक अन्य विचारधारा चिंतन–मनन के लिए सामने आती है।

'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद 'अज्ञेय' जी के ही तीन मित्र (नलिन, केसरी और नरेन्द्र) ने अपने नाम के प्रथम अक्षरों से 'नकेनवाद' के रूप में एक नये प्रगतिवाद स्वरूप प्रस्तुत किया था। यद्यपि यह शीघ्र ही समापन गति को प्राप्त हो गया, मगर इस विवाद ने भी प्रगतिवाद के विद्वानों को एक बार उसके प्रस्तावित स्वरूप पर पुनर्विचार करने को बाध्य तो किया।

वैसे साहित्य बौद्धिक संपदा है, इसलिए इसमें विवाद तो इसके अस्तित्व, इसकी महत्ता को स्थापित ही करते हैं। पिछले 1–2 वर्षों में हिन्दी कथा साहित्य की पुनुरुद्धारित विधा 'लघुकथा' के स्वरूप को लेकर जितनी 'स्कूल्स आफ लघुकथा' स्थापित हुए और हरेक के प्रिंसिपल ने अपने अनुसार 'लघुकथा' के आकार– प्रकार को लेकर इतने मानदंड गढ़ दिये कि एक विदुषी निर्णायक ने तो कथा के पृष्ठों की संख्या–3 होने के कारण ही उसे लघुकथा मानने से इंकार कर दिया, जबकि कथा केवल 969 शब्दों में पूर्ण की गई थी, मगर लेखक ने अपनी कमजोर दृष्टि के कारण इसे 16 प्वाइंट में टाइप कर दिया था और उसे उसी रूप में निर्णायक के समक्ष प्रस्तुत कर दिया।

संपादक लेखक ने लगभग 6 दशक पूर्व साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं के समक्ष अस्तित्व के संकट का प्रसंगानुकूल संदर्भ उद्धृत किया है।

इसका कारण तत्कालीन देशकाल और वातावरण में कथित सुसंस्कृत समाज में अंग्रेजी के प्रति मोह था (जो आज भी विद्यमान है), तत्कालीन कवि 'मुद्राराक्षस' की दुमछल्ले छंद की विधा में प्रकाशित यस कविता–

'या तो अब मीरा, सुर की बात न कीजे।
तुलसी के आदर्श टांग खूंटी पे दीजे।
भूषण, पद्माकर सभी देव और मतिराम।
भारतेन्दु तक के गिरे अब बाजार में दाम।
बनउआ जे बनो।
और हिन्दी भाषा राष्ट्र की है कहबे के हेत
सब नेतन पे है चढ़यो अंग्रेजी के प्रेत।।
न जो टारो टरे।
दृष्टि गोचर होता है।

मगर उस काल की हिन्दी लेखकों साहित्यकारों और पत्र–पत्रिकाओं के संपादकों ने नैतिक मूल्यों पर आधारित साहित्यिक निष्ठा से इन चुनौतियों का भरपूर सामना किया तथा साहित्य और पत्रकारिता की मशाल को प्रज्वलित किया।

इसके साथ ही लेखक ने बाजारवाद के विकास और उसके मानवीय जीवन शैली पर हाबी होने की भी प्रसंगानुकूल चर्चा भी की है।

साथ ही समाज में ज्वलंत चर्चा के विषय पुलवामा हमला और उसमें शहीद सैनिकों के प्रसंग को रेखांकित करते हुए इस अनैतिक क्रूर कर्म की भर्त्सना करके शहीदों को भी स्मरणांजलि देने के राष्ट्रीय दायित्व का भी पूर्णतया निर्वाह किया है और आज पूरे विश्व में व्याप्त आतंकवाद के समय में साहित्यकारों और पत्रकारों को कलम के चमत्कारिक माध्यम से ज्ञानदीप प्रज्वलित कर मानवतावाद का उज्ज्वल प्रकाश फैलाने का आह्वान किया है। संपूर्ण लेख इतना विचारगुम्फित है कि उसपर विद्वान ही बृहद चर्चा करेंगे। अनेक सुसंभावनाओं से भरपूर 'सुसंभाव्य' के इस पुरोवाक् के लिए हार्दिक साधुवाद!

समीक्षा :

मैं ही हूँ भावना

डॉ. विमलचन्द्र शुक्ल
पूर्व विभागाध्यक्ष प्राचीन इतिहास
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
ईवनिंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद

संगीता सिंह भावना द्वारा लिखित चौदह कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में लेखिका ने सदियों से चला आ रहा पुरुष वर्चस्व और सहमी–सिकुड़ी नारियों की मनःस्थिति और वेदना का मनोवैज्ञानिक एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया है; परन्तु इन कहानियों के नारी–पात्र पुरुषों के वर्चस्व के प्रति विद्रोह भी करते दिखाई पड़ते हैं। प्रायः सभी कहानियों में पुरातन एवं आधुनिकता के बीच एक प्रकार का अंतर्द्वन्द्वदिखायी पड़ता है। संग्रह की प्रथम कहानी 'शर्त' में क्षितिज और रश्मि के प्रेम के आड़े दकियानूस माता–पिता आ जाते हैं। माँ की गिद्ध दृष्टि दहेज पर है, पिता तो यहाँ तक कह देता है कि दहेज के सामानों को मेरी माँग समझिए या शर्त। इसी प्रकार शौचालय बनवाने की शर्त रश्मि के द्वारा रखे जाने पर माँ के द्वारा इस शर्त को मानना और किस प्रकार का शौचालय हो! इस पर रश्मि की राय लेना कहानी को एक नया मोड़ देता है। माता–पिता बच्चों का अहित नहीं चाहते, परन्तु सदियों से प्रथा–बेड़ियाँ सहजता से नहीं छूटतीं। दूसरी कहानी 'स्मृतिदंश' में गरीब माँ–बाप के द्वारा पढ़ाई के लिए बाहर भेजी गयी सौम्या और माँ राधिका के भिन्न दृष्टिकोणों का अंतर्द्वन्द्वहै। सौम्या शहरी चकाचौंध से प्रभावित है। माँ और संतान के बीच यह द्वन्द्वप्रायः सभी मध्यम वर्गीय की नियति बन चुकी है। इस संग्रह की कहानी 'नयी सुबह' एक ऐसे चरित्र को उजागर करती है, जो समाज में भौतिकता के चकाचौंध और धन लिप्सा के द्वारा सभी प्रकार के रिश्तों को समाप्त कर देती है। धन लिप्सा के कारण ही रश्मि की माँ ने पैसा लेकर उसकी शादी उद्योगपति गिरीश राम के बेटे निलेश से करा दी थी। यह जानते हुए कि निलेश चरित्रभ्रष्ट और औरतगामी था। लेकिन इस कहानी में नारी के अंदर छिपी हुई उस भावना को भी उजागर किया गया है, जिसमें वह हताशा से ऊपर उठकर और ऐसे पति को भूलकर नया जीवन शुरू कर सकती है। लेखिका ने 'सुमित्र काकी' नामक कहानी में एक ऐसी स्त्री का करुणापूर्ण एवं कष्टमय जीवन का चित्रण किया है, जो समाज की खोखली, किन्तु वास्तविकता को उजागर करता है। सुमित्र काकी पति के होते हुए भी परित्यक्ता–जैसा जीवन व्यतीत कर रही थीं और समाज की नजरें उसी की गलती मानकर उसी को तिरस्कृत कर रही थी। वह समाज को अंदर ही अंदर घुटते हुए कोसती रहती; लेकिन पुरुष समाज का वर्चस्व उसे पुरुष की दृष्टि से देखता रहता। इस संग्रह की कहानी 'आभासी प्रेम' में प्रेरणा के ऐसे जीवन का चित्रण लेखिका ने किया है, जिसमें प्रेरणा रवि को अंदर से प्यार करती है, पर रवि की व्यस्तता के कारण फेसबुक और चैट के माध्यम से जाने–अनजाने अपने फेसबुक दोस्त दीपक की तरफ आकर्षण महसूस करने लगती है। लेखिका ने प्रेरणा के इस अंतर्द्वन्द्वकी बड़ी निपुणता से उजागर किया है। अगली कहानी 'रिश्तों का पोस्टमार्टम' में एक ऐसे परिवार का चित्रण संगीता सिंह ने किया, जिसमें समर्थ लड़के माँ–बाप की उपेक्षा करके अपनी अलग दुनिया बसा लेते हैं और माता–पिता को बुलाकर कृत्रिम स्नेह प्रदर्शित करते हुए उनसे घर–गृहस्थी का सारा कार्य कराते हैं। एक मनमोहन की पुत्रवधू अपनी सहेली से मनमोहन की पत्नी अर्थात् अपनी सास के लिए मेड़ अर्थात् घर की नौकरानी शब्द का प्रयोग करती है। इस कहानी में माता–पिता के दिल तथा लड़के और पुत्रवधूओं के दो अलग–अलग रूपों का बखूबी चित्रण किया गया है। 'मरीचिका' कहानी में इस तथ्य को उभारा गया है कि ऐश्वर्य की चमक और विभूतियों का समाज एक मृग मरीचिका है, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देता है। इसी प्रकार जानकी श्रद्धा और गौरव के चित्रण को मनुष्य की भिन्न–भिन्न मनोवृत्तियों का चित्रण किया गया है। जानकी दैहिक वासना की भूखी है, परंतु गौरव अपनी पत्नी श्रद्धा के अतिरिक्त जानकी की ओर दृष्टिपात भी नहीं करता। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि यदि पुरुष दृढ़ हो तो नारी का आकर्षण उसे विचलित नहीं कर सकता और नारी का आकर्षण–अहंकार चूर–चूर हो जाता है। 'हैप्पी मदर्स डे मम्मा' में अंशिका और उसकी माता इन दोनों के माध्यम से एक ऐसे जीवन का चित्रण किया गया है, जिसमें बेटी का पैदा होना अभिशाप माना जाता है। यही कारण है कि अंशिका को माता–पिता का वह प्यार नहीं मिल पाता, जो उसे बचपन में मिलना चाहिए। संभवतः अंशिका इसी के कारण अंतर्द्वन्द्वमें जीती रहती। दूसरी तरफ अंशिका अपनी दोस्त प्रिया की माँ को रोज याद करती, जिसमें माँ ने अपनी किडनी देकर प्रिया को बचाया था। आज भी बेटी का जन्म अभिशाप माना जाता है। अगली कहानी 'छोटी–सी भूल' रेवा और प्रशान्त इन दोनों के अंतर्मन में उठ रहे विचारों को व्यक्त किया गया है। यद्यपि वे दोनों शब्दों के माध्यम से ही नहीं, अपितु अंदर ही अंदर महसूस करते हैं। रेवा प्रशान्त से माँ बनने की कामना करती है, लेकिन प्रशान्त उसे डाँट देता है। यहाँ लेखिका ने स्त्री के मातृत्व रूप की बात करते हुए यह सटीक उल्लेख किया है कि मर्द के प्यार–मोहब्बत की मियाद छोटी है, किन्तु शिशु के आने से वह दीर्घायु हो जाती है। जब प्रशान्त उससे यह कहता है कि वो सारा सुख दूँगा, जिससे तुम वंचित हो और यह सुनते ही रेवा को लगता है कि वह अब माँ बन गयी है। अगली कहानी में सुरभि नामक स्त्री का चित्रण किया गया है, जिसके जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आते हैं। खुद सुरभि का जीवन ऐसा हो चुका था, जिसमें शरीर तो कार्य कर रहा था, परन्तु मन कहीं मृतप्राय था। उसका पति अभिनव शराबी और अनेक लड़कियों में अनुरक्त रहता था और जब पति को सुधारने का सारा प्रयास बरगद पेड़ उगाने जैसा होता है, तो स्त्री के अंदर ऐसा आक्रोश पैदा होता है कि उग्र रूप लेकर स्त्री अपने उन्नति के सभी द्वार खोल लेती हैं। अगली कहानी रंजना और उसके पति अमित और इनके सास–ससुर के इर्द–गिर्द घुमती है। इस कहानी में दो प्रकार की अंतर्द्वन्द्वका बखूबी चित्रण किया गया है, जिसमें मायके में अधिक लाड़–प्यार और उसके कारण ससुराल में भी रंजना के द्वारा समुचित स्थान बना लेना तथा दूसरी तरफ मरते समय रंजना की माँ के द्वारा यह कहा जाना–'मेरे मरने के बाद मेरा संदेश जमींदार रतनपाल को पहुँचा देना'–रंजना के हृदय में तमाम अंतर्द्वन्द्वपैदा कर देता और माँ के हृदय का रहस्य, जिसको उससे रहस्य ही रहने दिया। ये दोनों ही अंतर्द्वन्द्वलेखिका ने सहज और सरल भाषा में उपस्थित किया है। 'मैं ही हूँ भावना' ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका ने कहीं न कहीं अपने ही अंतर्मन को उपस्थित किया है। ट्रेन में संगीता का भावना से मिलना और संगीता के द्वारा भावना को अपनी प्रेरणा बताना–ये दोनों ही लेखिका के अपने प्रतिरूप कहानी की मूल प्रेरणा भावना ही होती है। यह महत्वपूर्ण बात है कि वह काल्पनिक भावना संगीता से कह रही है, उसे अलग मत रखो, साथ रखो। अगर भावना खत्म हो जाए तो कोई कहानीकार अपनी लेखनी में जिंदा नहीं रह सकता। संग्रह की अगली कहानी 'जीवन संध्या', जिसमें महानगरी भीड़– भाड़ मुम्बई की चाल दोनों के भिन्न–भिन्न रूपों का वर्णन किया गया है। बच्चे बड़े होकर अलग रहते हैं, वसुधा चाल में पड़ी रहती है और धीरे–धीरे पड़ोस के एक बुजुर्ग से उसकी सहानुभूति हो जाती है और दोनों परस्पर बात करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं। अंतिम कहानी 'किताबों की प्रहरी' में ऐसे धरमवीर का चित्रण है, जो अपनी किताबों को लेकर बहुत सशंकित और असुरक्षित महसूस करते हैं। एक दिन आग लगने से धरमवीर की किताबें जल जाती हैं और विक्षिप्त होकर प्रलाप करने लगते हैं। यह सच है कि अध्ययन और मनन करनेवालों के लिए पुस्तक उनके जीवन की अतुल्य निधि होती है।

इन सभी कहानियों में स्त्रियों के विविध रूपों और स्त्री–पुरुष के सहज और असहज दोनों प्रकार के संबंधों के कारण उठनेवाले अंतर्द्वन्द्वों का मनोरम एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। लेखिका स्त्री होने के नाते स्त्री के मनोभावों का अनुश्रवण ज्यादा अच्छे ढंग से कर सकने में सक्षम है। समाज में फैली विभिन्न प्रकार की बेड़ियों में जकड़ी और उन बेड़ियों को तोड़ती हुई स्त्रियों की अलग–अलग मनोवृत्तियों का चित्रण लेखिका ने सहज ढंग से किया है। इसके लिए वे बधाई की पात्र हैं।

समीक्षा

पिता–छाँव वट वृक्ष की
(दोहा–संग्रह)

सोनिया वर्मा
हीरापुर, रायपुर, छ.ग.
8357803400

सैकड़ों सालों की काव्य–परंपरा में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखनेवाला अगर कोई छंद है तो निस्संदेह वह दोहा है। दोहा में (13...11) मात्राओं की दो लयबद्ध सम तुकांत पंक्तियों में अपनी बात कही जाती है, जिसे पढ़ते ही पाठक अद्‌भुत रस का अनुभव करता है और स्वतः सुख से वाह...ह... निकल पड़ता है। बहुत से विषयों पर दोहे लिखे जा चुके हैं और लिखे भी जायेंगे। परन्तु किसी एक विषय पर दोहा लेखन विचारणीय है। यह कारनामा है रायपुर (छ.ग.) के आदरणीय राजेश जैन राही जी की, जिन्होंने पिता पर प्रथम संस्करण में 201 और द्वितीय संस्करण में 365 दोहे लिखने का कीर्तिमान स्थापित किया।

पिता शब्द सुनते ही दिल दिमाग में पिता की छवि बन जाती है। पिता का त्याग, समर्पण, प्यार, दुलार, डाँट, मार, समझाना, प्रोत्साहित करना, जीवन के हर मोड़ पर डटे रहना और न जाने कितनी बातें, यादें दिलों दिमाग में हलचल करने लगती है। पिता का होना धूप में छाँव है वट वृक्ष की तरह ऐसे ही अपने अनुभवों और प्यार को आदरणीय राजेश जैन राही जी ने दोहों के रूप में ढालने का सफल प्रयास किया है और नाम रखा 'पिता छाँव वट वृक्ष की।' जो एक दोहा–संग्रह है। यह पिता केन्द्रित 365 दोहों का अनूठा संग्रह है। किसी एक विषय पर इतने दोहे लिखना आसान नहीं है। इस प्रकार के लेखन में दोहराव का संकट भी बना रहता है। आदरणीय राहीजी इससे बच नहीं पाये हैं। किन्तु पिता का कोई पक्ष छूटा हो, ऐसा भी दिखाई नहीं देता। एक खास बात यह है कि पिता पर आधारित प्रथम पुस्तक है, जिसे गोल्डन बुक ऑफ रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। बड़े बजुर्गों का आशीर्वाद हमारे राह की बाधाओं को कैसे दूर करता है, राहीजी इसी अनुभव को दोहे में कहते हैं–

नमन करूँ मैं तात को, हाथ जोड़कर आज।
जिनके आशीर्वाद से, बनते सारे काज।।

बाबूजी का आशीर्वाद ही राह की बाधाएँ दूर कर कार्य पूर्णता में मदद करता है। पिता द्वारा दिये संस्कार संतान की उपलब्धियों के रूप में फलित होते नजर आते हैं और इनकी सीख जीवन में हर राह पर किसी न किसी रूप में हमारी मदद करती है।

सपनों को मिलने लगा, मनचाहा विस्तार।
बाबूजी के पाठ का, गहरा था आधार।।

बच्चा हो या युवा वर्ग सभी चाहते हैं कि पिता का मार्ग दर्शन, सुझाव जीवन के हर मोड़ पर मिलता रहे। राहीजी इन्हीं भावों के साथ निवेदन करते हैं कि–

पिता छाँव वट वृक्ष की, धूप न लगने पाय।
खाद डालकर प्यार की, रखना सदा बचाय।।
मैं माटी कच्ची नयी, बापू बने कुम्हार।
ज्ञान चाक में ढालकर, मुझको दिया सुधार।।
खाकर थप्पड़ गाल पर, होना नहीं अधीर।
बना रहे तुमको पिता, धीर वीर गंभीर।।

पिता की डाँट और मार हमें जीवन में आनेवाली चुनौतियों के लिए मजबूत करती हैं। एक पिता हर साल में बच्चों का साथ देते हैं, जब कोई भी साथ हो या न हो, उचित मार्गदर्शक बन बच्चों के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। राही जी कहते हैं कि–

हाथों में हरदम रहे, बाबू जी के हाथ।
छोड़ा सबने साथ पर, बाबूजी थे साथ।।
बच्चों को देनी मुझे, अच्छी एक सलाह।
बापू पर आश्रित नहीं, खोजो अपनी राह।।

अच्छे सुंदर से इस रिश्ते में खट्टी, मिट्ठी के साथ कुछ कड़वी यादें भी रहती हैं। ये वास्तविकता है कि वर्तमान में बच्चे माँ बाप को बोझ समझ वृद्धा–आश्रम में छोड़ देते हैं या खुद सपत्नीक अलग रहने लगते, ऐसी घटनाएँ किन्हीं ने देखी होंगी और देखी नहीं तो अखबार आदि के माध्यम से पढ़ी–सुनी जरूर होगी, राहीजी के शब्दों में देखें, इसे–

रिश्तों पर भारी हुआ, पैसा पद अधिकार।
पुत्र चला परदेश को, पिता यहाँ बीमार।।
ध्यान रखा परिवार का, किया नहीं आराम।
बच्चों ने दागे मगर, बापू पे इल्जाम।।
सुलह सफाई हो गई, सुलझा आज विवाद।
आश्रम में रहने लगे, बाबू जी आजाद।।
तीखे–तीखे बोल हैं, बेटा है या तीर।
घायल दिल माँ बाप का, लाइलाज है पीर।।

वृद्ध मात–पिता को छोड़ बच्चे पैसे कमाने विदेश चले जाते हैं, मात–पिता लाचार असहाय हो अंतिम श्वास तक बच्चों का इंतजार ही करते रहते हैं। बच्चों के बड़े होने के साथ ही उनकी इच्छाएँ, ख्वाहिशें और जरूरतें बढ़ने लगती हैं। कमी उनकी पढ़ाई, शौक या स्टेटस मेंटेन करने का खर्च, पिता इसे पूरा करने में एड़ी चोटी का जोर लगा देता है पर, बच्चे इतना करने पर भी उन्हें नादान कहने से भी नहीं चुकते।

बेटों के कारण बिका, खेत सहीत खलिहान।
नालायक फिर भी कहें, बापू हैं नादान।।
बापू ने बाँटी सदा, खुशियाँ औ मुस्कान।
बच्चों ने वापस किया, आँसू भरा जहान।।
बेटे की इच्छा बहुत, जाए पढ़े विदेश।
बापू ने गिरवी रखीं, चीजें सभी विशेष।।

पिता खुद को असहाय महसूस करता है, जब पिता पुत्र को सुधारने की कोशिश करते–करते हार जाता है।

लाख करो कोशिश मगर, बेटा बिगड़ा जाय।
नये दौर में हो गये, बाबूजी असहाय।।
मुखड़े की झुर्री कहे, देखा है संसार।
बच्चों के आगे मगर, बाबू जी लाचार।।

समाज में बेटियों और बेटों में हो रहे भेदभाव, लड़कियों की संख्या में कमी व दहेज जैसी समस्या के लिए दोहों में सुंदर संदेश दिया है–

बहू चाहिए आपको, बेटी रखो सहेज।
भ्रूण बचाना ही अगर, रोको तात दहेज।।
बहुओं को भी दे रहे, बेटी जैसा मान।
बाबूजी चाहें सदा, कुनबे को उत्थान।।
बापू को मालूम थे, बेटों के सब हाल।
चलो बुढ़ापा कट गया, बेटी करे निहाल।।
बेटे सारे दूर हैं, बाप किसे है याद।
बेटी का दिल मोम सा, रोज करे संवाद।।

पिता के छोड़ जाने का दुःख या उनके न रहने का अहसास मात्र से होनेवाली तकलीफ को कवि के नजरिये से इन दोहों को देखिए–

बाबूजी जाना नहीं, छोड़ बीच मझधार।
रौनक घर की आपसे, रूह आप परिवार।।
बाबूजी जबसे गये, हुआ सभी को ज्ञान।
फूलों से खुशबू गयी, घर भी हुआ मकान।।

आदरणीय राजेश जैन राहीजी की हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इतनी बेशकीमती किताब पढ़ने का सुअवसर दिया। उल्लिखित दोहों ने खुद–ब–खुद किताब के बारे में सब कुछ बोल दिया है। मैं राहीजी को सार्थक सृजन व गोल्डन बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में किताब का नाम दर्ज होने की बधाई व ढेर सारी शुभकामनाएँ प्रेषित करती हूँ।

समीक्षा

जनवादी चेतना और वैचारिक संघर्ष के कवि : उमाशंकर राव 'उरेन्दू'

अशोक सिंह
दुमका, झारखंड
मो.–9431339805

कविता में 'विचार' और वैचारिक कविताओं को लेकर कवियों साहित्यकारों के बीच अक्सर मतभेद की स्थिति बनी रहती है। यह मतभेद पहले भी था, कमोवेश आज भी है और बहुत संभव है कि आगे भी बना रहेगा। साहित्यकारों के एक वर्ग का मानना है कि साहित्य विचारों का समूह है। किसी युग के विचारों का पता लगाने के लिए उस युग के साहित्य का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है। दूसरा वर्ग कहता है कि विचारों की दृष्टि से साहित्य का अध्ययन करना, साहित्य को समझने में बाधक हो सकता है। ठीक वैसे ही जैसे किसी कलाकृति को कला के सिद्धांत–कथन को आधार मानकर देखना और उसी दृष्टि से उसका अध्ययन करना, कला के सौंदर्य को खंडित कर देता है। इन तर्क–वितर्क के बीच वह भी सुनने–समझने को मिलता है कि साहित्य का इतिहास बौद्धिक प्रगति को अपने में प्रतिबिम्बित करता है, इसलिए साहित्यिक रचनाओं में विचारों और दार्शनिक सिद्धांतों की खोज करना व्यर्थ नहीं है।

सैद्धांतिक आलोचना, काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र का विचार और दर्शन से घनिष्ट संबंध रहा है, इसलिए कविता और विचार के बीच के संबंध को एकदम से अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता और न ही विचार को कविता से पूरी तरह अलग करके देखा–दिखाया जा सकता है। किसी युग का राजनीतिक सामाजिक आंदोलन, किसी विशेष प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया, साहित्य और दर्शन, दोनों को एक साथ प्रभावित करते हैं। ऐसे में उस युग का साहित्यकार भी उस प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। इसी परिप्रेक्ष्य में अगर अपने समय के संभावनाशील जनवादी कवि उमाशंकर राव 'उरेन्दू' के कविता संग्रह 'हाल जानना है तुम्हें' को देखें–परखें तो एक साथ कई बातें उभरकर हमारे सामने आती हैं। शब्दों और वाक्यों से बने उस अबुझ कोलाज की तरह, जहाँ एक साथ कई चटक और उदास रंगों की छाया एक दूसरे पर पड़ती है ओर कई आड़ी तिरछी रेखाएँ एक दूसरे को काटती, एक दूसरे के भीतर से होकर ऐसे गुजरती है, जिसमें भाव और संवेदनाओं को देखना, ढूँढ़ना, समझना कुछ–कुछ कठिन सा हो जाता है।

उमाशंकर राव 'उरेन्दू' के कविता संग्रह 'हाल जानना है तुम्हें' से गुजरते हुए कहा जा सकता है कि उरेन्दू जी की प्रायः सभी कविताएँ जहाँ एक ओर जनवादी विचारों से लेश अपने समय– समाज, सत्ता और व्यवस्था से मुठभेड़ करती वैचारिक संघर्ष की कविताएँ हैं, वही दूसरी ओर कमोबेश मुक्तिबोध की तरह अपने भीतर के अंतर्द्वन्द्वको झेलती आत्मसंघर्ष की भी कविताएँ हैं। चूँकि उरेन्दूजी न सिर्फ सामाजिक, आर्थिक असमानता का यथार्थ दंश झेल चुके हैं, बल्कि संघर्ष की आग में तपे–तपाये भी हैं। 'यथार्थ दंश' जैसी साहित्य पत्रिका के संपादन के दौरान मैंने संपादकीय कौशल व वैचारिक संघर्ष को करीब से देखा सुना समझा है, इसलिए यह बात सिद्दत से कह सकता हूँ कि उनके विचार इतने पक्के हैं कि अपनी कविताओं में वे वैचारिक रूप से बहुत हद तक परिपक्व नजर आते हैं। विचारों की यह परिपक्वता उनकी कविता का मूल आधार है। तभी तो वे कहते हैं कि 'जब आग जलती है/ तब लोग सेंकते हैं अपना–अपना हाथ/ पता है कि आग से हाथ का/ कोई समझौता नहीं रहा है कभी/ लेकिन आग लगाने के पीछे भी होता है कोई न कोई हाथ ही! बात बेरोजगारी की हो या बेबसी लाचारी और मँहगाई की, कवि की चिंता की परिधि में वे तमाम चीजें हैं, जो आम आदमी की दिनचर्या और संघर्ष में शामिल हैं। बेरोजगारी के प्रति कवि की चिंता देखिए, कवि कहता है–सोचो/ बेरोजगारी की मार सहते– सहते/ देश के नौजवान/ उठा चुके हैं हाथों में बंदूक/ चल गये हैं जंगल/ छोड़कर खाट में चिपकी बूढ़ी माँ को/ आखिर उनकी माँ की कोख का क्या कसूर है?इस सवाल के बीच, ऐसे लोगों के प्रति एक चिंता भी है और समाज से यह अपेक्षा भी, कि–जरा सोचो/ कि बंदूकों से कैसे पाटेंगे वे/ असमानता की खाई/ विषमता के पथरीले बंजर/ क्या तुम उनके लिए/ नहीं गा सकते हो एक जागरण गीत?

कैसी विडम्बना है कि एक ऐसे संवेदनहीन समय में जब आदमी मानवीय संवेदना से विमुख होकर आधुनिकता की अंधी दौड़ शामिल है और धन व यश लोलुपता के लिए किसी को भी धकिया–मुकियाकर आगे और सबसे आगे निकल जाने के लिए बेचैन दिखता है। यह भूलकर कि उसकी इस दिशाहीन तेज रफ्तार में, उसके पाँव के नीचे, कई चीजें ऐसी हैं टूट–फूटकर बिखर रही हैं। कवि उन टूटती–बिखरती चीजों और हाशिए पर धकेल दिये गये लोगों के हालात देखकर दुखी और परेशान है। तभी तो वंचित लोगों के लिए कविता में कवि कहता है–हम चबाना चाहते हैं आग/ उगलना चाहते हैं चिंगारी/ उनके लिए/ जो हाशिए पर खड़े–खड़े/ रोशनी से वंचित/ बना रहे हैं चिथड़ों से/ अपने–अपने घरौंदे।

इतना ही नहीं, कवि उसके संघर्ष को सहयोग और समर्थन देना चाहता है। उसकी जुबान को 'शब्द' देना चाहता और उनके विचारों को 'भाषा'। उसी कड़ी में कवि आगे कहता है–हम गाना चाहते हैं एक गीत/ भूख के खिलाफ हाशिए पर खड़े लोगों के लिए/ जिनके पास नहीं है कोई भाषा। कवि का मानना है कि ऐसे लोगों के पास ही जीवन है और इन्हीं की बदौलत ये दुनिया टिकी है। दुनिया को अपने स्वार्थसिद्धि के लिए नष्ट–भ्रष्ट करनेवालों से दुनिया नहीं बनी है। न ही वैसे लोगों से जो पेड़ों और पहाड़ों को काट रहे हैं, छल–प्रपंच के सहारे आगे बढ़ रहे हैं, आम आदमी को हाशिए पर धकेल कर। 'दुनिया की महत्वपूर्ण चीजें' कविता में कवि कहता है–सदा–सदा से दुनिया उनके लिए है/ जो गाना चाहते हैं गीत/ बजाना चाहते हैं बाँसुरी/ लिखना जानते हैं कविताएँ/ उकेरना चाहते हैं चित्र/ और गढ़ना जानते हैं अनगढ़ पत्थरों से सुंदर मूर्तियाँ/ दुनिया उन्हीं की है सदा–सदा। कविता में स्पष्ट है कि कवि की पक्षधरता समाज के उन उपेक्षित लोगों के साथ है, जो समाज में जीवन और प्रकृति के बीच संतुलन बनाते हुए मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण पूरी सामाजिकता के साथ एक दूसरे के लिए जीवन जी रहे हैं। कवि की यही जनपक्षधरता उन्हें न सिर्फ समाज को जोड़े रखती है, बल्कि अपने सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध भी बनाती है। एक लेखक का लेखकीय सरोकार इस बात पर निर्भर करता है कि वह लेखक अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति कितना और किस कदर प्रतिबद्ध है। इसमें कोई दो राय नहीं कि उमाशंकर राव उरेन्दू का लेखकीय सरोकार इस कसौटी पर बहुत हद तक खरा उतरता है। कवि के व्यक्तित्व और पारिवारिक जीवन को भी बहुत करीब से देखने समझने का अवसर मिला है और हमने पाया है कि उनके व्यक्तित्व और कविकर्म में कोई दोहरापन नहीं है। वे जैसा चाहते हैं, वैसा दीखते भी हैं और जीते भी हैं। कवि के जीवन की यह सरलता व सहजता उनकी कविताओं में उतर आयी है, बिल्कुल सीधे–सपाट ढंग से, वह भी आम बोलचाल की भाषा में, बिना किसी लाग–लपेट के। भले ही वह कविता के फ्रेम में फिट हो या ना हो।

उरेन्दूजी का काव्य–संसार विविधताओं से भरा है। कहीं वो 'सपनों में माँ को कुम्भ यात्रा' कराते हैं तो कहीं 'चलते–चलते' कई–कई सवाल करते

हैं। कभी किसी 'बुढ़िया' के पास पहुँचकर उसके दुख–दर्द में हाथ बँटाते हैं, तो कभी 'एक बच्चे की प्रार्थना' में शामिल होकर उसके लिए प्रभु से खेत–खलिहान, झरने और खेतों की पगडंडियाँ बचाये रखने के लिए प्रार्थना करते हैं। 'कठिन समय में' कवि की जीवटता भी सैल्यूट करने लायक है कि उसमें सारे सपने अधूरे रह जाने के बाद भी वह 'एक मुट्ठी चना' बोने के लिए निकल पड़ता है। और इतना ही नहीं, हिम्मत और हौसला देखिए कि वह कहता है–''चना बोने की सूचना/ देनी है सबसे पहले/ एक पोस्टकार्ड लिखकर/ कामरेड नामवर सिंह को/ लेकिन पड़ोसियों का मानना है/ कि श्रीसिंह आजकल पोस्टकार्ड कम/ टेलिफोन पर सुनते हैं ज्यादा।'' इतनी बड़ी साहित्यिक दुनिया में अपने–अपने गढ़ और मठों में अपने–अपने भक्तों के साथ बैठे मठाधीशों के बीच मुट्ठी भर शब्दों और वाक्यों को लेकर 'विचारों का बीज' निकले इस कवि की रचनात्मकता पाठकों को प्रभावित ही नहीं, प्रेरित भी करती है और अचंभित भी।

कवि की 'कविता यात्रा' यहीं तक नहीं रुकती। वह उससे भी आगे बढ़ती है और कहीं 'वंचितों के लिए' उसकी आवाज बन जाती है, तो कहीं 'पृथ्वी की शांति के लिए' पहाड़ पर चली जाती है। कहीं बचपन की अमराइयों में अपने गुम हो गये बचपन को ढूँढ़ती है, तो कहीं उत्सव के महानायक के उस दोहरे चरित्र को उजागर करती है, जो जानते हैं चापलूसी का व्याकरण और मनाते हैं विजय उत्सव। वे कहीं अपनी कविताओं में 'बागी' हो जाते हैं, तो कहीं 'एक अकेला कवि'। विचारों की गंभीरता और परिपक्वता, देखिए कि 'भाषा की तलाश' करते–करते कहीं उनकी सोच जनतांत्रिक हो जाती है, तो कहीं श्रावणी मेला में सड़क किनारे बैठ भुट्टा पकाती उस स्त्री के उस विश्वास पर जाकर टिक जाती है, जिसे अपने और अपने कर्म से ज्यादा ईश्वर पर विश्वास है कि भोले शंकर ही पार उतारेंगे। इतना ही नहीं, उनकी चिंताओं में 'बेटी' भी है 'चिड़िया' भी ओर 'स्कूल' भी। आदमी के काटने से आदमी के मरने की बात हो या 'हाथ का राजनीतिकरण' या फिर 'नंगी जाँघों पर' फिसलती नजरों के पीछे का चकाचौंध! सब पर न सिर्फ उनकी पैनी दृष्टि गई है, बल्कि बड़ी बेबाकी से उसपर उन्होंने अपना वैचारिक प्रतिरोध भी जाहिर किया है।''वे दलाल हैं/ वे बिचौलिये हैं/ जो लोकतंत्र को गिरवी रखकर/ बन गये हैं तुम्हारे प्रतिनिधि/ जो धरती माँ को बेचकर/ झंडों की दुकानदारी कर रहे हैं।''

संग्रह के नामकरण से जुड़ी कविता पर एक नजर डालें तो यह बात निःसंदेह कही जा सकती है कि यह कविता, संग्रह की कुछ महत्वपूर्ण और प्रतिनिधि कविताओं में से एक है, जो संग्रह की धूरी की तरह है और जिसके इर्द–गिर्द संग्रह की सारी कविताएँ घूमती हैं। उसकी कुछ पंक्तियों को देखिए–''उनके पास भी तुम्हें जाना होगा/ पूछने के लिए एक बार। उस रास्ते से वहाँ/ जहाँ कलमुँहे बेरोजगारी से ऊबकर/ अपने कंधे पर बंदूकें झेल रहे हैं। देश के सीने पर गोलियाँ उगा रहे हैं/ उनके बूटों की आवाज से/ शांति के सारे कबूतर जहाँ हताश हो/ गुटुरगूँ करना भूल गये हैं।'' इतनी हताशा व निराशा के बावजूद जीवन के प्रति कवि की रागात्मकता और जिजीविषा देखिए कवि कहता है–''एक ऐसा खेत बनाया जाए/ पृथ्वी पर/ जहाँ जीवन उगाया जाए/ दृष्टि दी जाय मानव को/ अँखुआए हुए ईख के बीज की तरह/ और पृथ्वी को मिठास से सींचा जाए।''

के.के.पब्लिकेशन से वर्ष 2015 में प्रकाशित हुए इस कविता संग्रह में कुल 41 कविताएँ हैं। संग्रह में लगभग एक सौ पृष्ठ हैं, जिनमें 4 पृष्ठों में वरिष्ठ कवि उत्तम कुमार सिंह पीयूष की गंभीर, पठनीय व महत्वपूर्ण भूमिका है और लगभग इतने ही पृष्ठों में 'अपनी बात' के तहत कवि के अपने लेखकीय अनुभव भी है और समय, समाज व कविता पर अपने विचारों के साथ–साथ लेखन यात्रा की एक कथा भी है। संग्रह के आवरण पृष्ठ पर अंकित चित्र बहुत ही आकर्षक है, लेकिन मुद्रण की तकनीकी खामियों की वजह से उसकी प्रभावोत्पादकता प्रभावित हो गयी है। मुद्रण और प्रकाशन की अनुभवहीनता पुस्तक में शुरू से अंत तक खटकती है। आवरण पृष्ठ पर लेखक से ज्यादा प्रकाशक दिखता है। कविताओं की गुणवत्ता पर बात करें तो एक तिहाई कविताएँ ही समकालीन कविताओं की कसौटी पर कमोबेश खरा उतरती है। बाकी कविताएँ सामान्य और सपाटबयानी से ज्यादा कुछ नहीं दिखती। कविताओं में अनावश्यक विस्तार कविताओं को बोझिल बना देती है। कविताओं में वैचारिक इस कदर हावी है कि कविताएँ कम, कवि ज्यादा बोलता दिखाई देता है। भाषा, सरल तो है, परन्तु सतही व बनावटीपन के शिकार दिखती है। शिल्प का कच्चापन कुछ ज्यादा ही खटकता है। विषय–वस्तु, समय– समाज, और वर्तमान व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में प्रायः सभी कविताएँ समय सापेक्ष और समीचीन तो हैं, लेकिन कहने का अंदाज प्रभावी नहीं दिखता। कविताओं में लोकतत्व का अभाव तो है ही, कविता की बनावट और बुनावट भी बहुत ही ढीली–ढाली है। बिम्ब और संवेदनाओं की बात करें तो कविताओं में कमोबेश संवेदनाएँ तो हैं, लेकिन वैचारिकता की बोझ में इतनी दब गयी हैं कि वह सहज रूप से संग्रह में सर्वत्र दिखाई नहीं देती, बल्कि कहीं–कहीं एक झलक मात्र ही दिखाई पड़ती है। शायद यही वजह है कविता पठनीय तो है, लेकिन सम्प्रेषणीय नहीं बन पाई है।

किसी भी युग का और किसी भी देश का साहित्यकार सत्य, न्याय, नैतिकता, सुंदरता, प्रेम, समता जैसी सकारात्मक चीजों का पक्षधर और असत्य, अन्याय, अनैतिकता, कुरूपता, घृणा, विषमता, पराधीनता जैसी नकारात्मक चीजों का विरोधी होता है। इस कसौटी पर देखें–परखें तो उरेन्दूजी का लेखन अपने समय, समाज, सत्ता और व्यवस्था में एक सकारात्मक वैचारिक हस्तक्षेप करता तो अवश्य दिखाई देता है, लेकिन बहुत ही हल्के–फुलके और सतही ढंग से। ऐसे में यहाँ इस बात को स्पष्ट करना जरूरी हो जाता है कि यदि वैचारिकता या विचारधारा को केवल सीधे–सीधे स्पष्ट, उपदेशात्मक अथवा विचारात्मक ढंग से वर्णित किया जाएगा, तो वह रचना साहित्यिक नहीं रह जाएगी। इसके विपरीत यदि विचारों को कलात्मक एवं सांकेतिक अभिव्यक्ति मिलती है, तो निश्चय ही वह कृति साहित्यिक बन जाती है।

निष्कर्षतः साहित्य में विचारों की भूमिका को लेकर कहा जा सकता है कि साहित्य जहाँ एक ओर विचारों को शाश्वत संवेदना के रूप में उपस्थित करता है, वहीं दूसरी ओर शब्दों और वाक्यों के बीच अपनी कोमल भावनाओं को, कल्पना के महीन धागों से बुनता है। न कि अनियंत्रित, अव्यवस्थित व दिशाहीन विचारों को शब्दों और वाक्यों में जोड़कर कोई ऐसा कोलाज रचता है, जो देखने में सुंदर तो लगता है; परन्तु उसका कोई व्यापक और गूढ़ अर्थ प्रतिध्वनित नहीं होता। बावजूद इस पुस्तक की भूमिका लिखनेवाले वरिष्ठ कवि उत्तम कुमार पीयूष की इस बात से कुछ हद तक सहमत जरूर हुआ जा सकता है कि अपनी पहली पुस्तक में विन्यास और सम्प्रेषण की तमाम सीमाओं के बावजूद उरेन्दूजी, जिस स्पष्टता से यथार्थ और जमीन का इर्द चहुँओर व्यक्त करते हैं, इससे यह उम्मीद जगती ही है कि आनेवाले दिनों में झारखंड की सांस्कृतिक नगरी देवघर को एक सतर्क एवं ऊर्जावान रचनाकार मिल सकेगा।

सामाजिक जीवन में जब नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य ही जनमानस का मार्गदर्शन करता है।
सुसंभाव्य

आलेख

समकालीन कविता का निहितार्थ

प्रो0 मृत्युंजय उपाध्याय
डी.लिट्. वृंदावन, धनबाद
मो. 9065197429

जीवन सदा मनुष्य को छलता जाए, वहाँ न मिले उसे आश्रय, सुकून, तो वह आखिर कहाँ जाए, क्या करे, यही द्वंद्व उसे घेरे रहता है। चैन नहीं लेने देता। अभाव, दरिद्रता का दानव तो जैसे पाँव तोड़कर वहाँ बैठ गया है। आलम यह है कि एक औरत वस्त्राभाव में घर से निकल नहीं पाती। कैसी विडम्बना है, कैसा विपर्यय है कि उसकी नग्नता को उसके बच्चे ही ढँके रहते हैं–'रंगतु की औरत किसी के बुलाने पर नहीं निकल सकी बाहर, क्योंकि उसकी नग्नता को ढँगे उसके बच्चे उससे पहनावे की तरह चिपके हुए थे।' लीलाधर जगूड़ी की 'बलदेव खटिक' कविता इसका साक्ष्य है–

रंगतू की नंगी औरत
बाहर नहीं आ सकी
लेकिन भीतर बच्चे उसके शरीर से पहनावे की तरह चिपके हुए थे। (रात अब भी मौजूद है, पृ. 107)

आदमी कितना डरा, सहमा, असुरक्षित महसूस करता है आज के समय में। कहीं सामाजिक दृष्टि में अपने लिए चिंताकुल है, तो कहीं अपने परिवार के खातिर–

बार–बार उभरता है
एक डर परिवार को छोड़ेंगे
घर के भरोसे
लेकिन किसके भरोसे पर छोड़ेंगे घर
(बची हुई पृथ्वी, पृ. 103)

इसी दुःख, दर्द, अभाव, फाकामस्ती को मुक्तिबोध ने वर्षों जिया। सन् 1935 से 1942 तक की उनकी कविताओं में व्यक्ति प्रधन रचनाओं की मात्रा अधिक रही। बाह्य जगत और अंतर्जगत का विरोध, जिसमें रूमानियत और भावुकता की प्रधानता थी, उन्हें यथार्थ के खुरदुरे और कठोर धरातल पर ले आया। मार्क्सवादी पद्धति ने इस ज्वाला को और उग्रता प्रदान की। समाजोन्मुखता एवं सामाजिक प्रतिबद्धता का स्वर तेज होने लगा। फिर तो उन्होंने रंगे सियारों, भेड़ की खाल में छिपे भेड़ियों को देखा, पहचाना और उघारकर नंगा कर दिया।

वह अपने समय और समाज से भली भाँति परिचित थे। वह पूँजीवाद, छल, षड़यंत्र एवं कुइरादों को भली भाँति जानते थे। इसलिए जनता को उनकी कुचालों और दुरविसंगतियों से सचेत किया।

उनकी सचेत दृष्टि यह पहचानने में नहीं चूकी कि समाजवाद का दंभ भरनेवाले ये नेता भी ढोंगी मात्र हैं। उन्होंने ही निजी स्वार्थ के खातिर समाज को बाँट दिया है वर्गों में। सभी नियम, कानून बनाए हैं, अपने लाभ के खातिर। समय–समय पर उनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं संशोधन भी उनके निजी स्वार्थ हित हैं।

वे जड़ता के पंजे
अपनी ही स्थितियों का औचित्य
करते हैं स्थापित
विशेष दृष्टि से चरित्र–विश्लेषण
निज ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करते हैं
न्यायोचित बताते हैं निज को
(अनसुनी करते हैं आत्मा की आवाज)

प्रजातंत्र जहाँ जनता का, जनता द्वारा और जनता पर (अब्राहिम लिंकन के अनुसार) संचालित है। वहाँ पूँजीपति राजनेता हमारे चुने हुए प्रतिनिधि से संधि कर मिलीभगत से जनता का नाना विधि से शोषण करते हैं। एक ओर गोदाम अनाज से भरे हुए हैं और दूसरी ओर कृत्रिम अभाव पैदा कर भूखमरी लाना। मसलन कालाबाजारी और अनाजखोरी से अपना खजाना भरना उनका स्वभाव है। उन्होंने पूँजीपतियों को 'भेड़िया' कहा, जो आक्रमण के लिए सदा तत्पर है। ये पीछे छिपकर जो व्यूह–रचना कर रहे हैं, वह सर्वथा विनाशकारी है।

हमारे पीछे एक और आकाश है
मैं उसे नहीं बता पा रहा हूँ
जिसमें हर पेड़ को जड़ तक तपा देने की
साजिश हो रही है।
(नाटक जारी है, पृ. 79)

इसी की शंका कभी दिनकर को हुई थी। वैसे साधन सम्पन्न (ींअमे) एवं विपन्न (भ्ंअमे दवज) का संघर्ष, चिरंतन है, पर समाजवादी, कल्याणकारी, प्रजातांत्रिक व्यवस्था में यह जारी रहे, तो चिंता स्वाभाविक है। फिर तो संपूर्ण क्रांति, भयंकर विद्रोह की प्रचंड ज्वाला का फैलना भी जरूरी है। इसीलिए दिनकर को कहना पड़ा था–

रण रोकना है तो उखाड़ विषदंत फेंको
वृक व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो
अथवा अजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र
दाँतों में कराल कालकूट विष भर दे
रस सोखता है मही का जो भीमकाय वृक्ष
उसकी शिराएँ तोड़ो, डालियाँ कतर दो।
(कुरुक्षेत्र, उदयाचल, पटना)

कोई प्रलय हो या महाविनाश का मंजर शोषक–शोषित का निरंतर हो संघर्ष, चूहे–बिल्ली का खेल हो–कविता सर्वत्र जाती है। उसे प्रकाशित ही नहीं करती, लड़ने, डटने की शक्ति भी देती है। उसके साथ–साथ लड़ती है, जीती है। कभी थकती, हारती नहीं–

अगर कहीं जाती भी है
तो जीने का सबब तलाश करने के लिए
निहत्थों के जंग में शरीक होने के लिए
दरिंदा हवाओं को टोकती हुई
बेकाबू पानी के रू–ब–रू होती।
(कविता कहीं नहीं जाती, परमिंदर जी, पंजाबी से अनूदित)

दिनकर बनाना चाहते हैं मेमनों को बाघ। परमिंदर कविता को निहत्थों की जंग में शरीक होने का इसीलिए करते हैं आह्वान कि वे शोषण और अत्याचार की चक्की में पिसते जनसामान्य के प्रति सच्ची सहानुभूति रखते हैं। मुक्तिबोध पूँजीपति और पूँजीवाद को जड़ से इसलिए मिटाना चाहते हैं–

पूँजीवादी शक्तियाँ भयंकर
जन–जन को
दमन की फासिस्टी भट्ठी में
झोंककर बनाया

चाहती हैं वे
उनकी अस्थियों से श्वेत
आराम का फर्नीचर।
(जिंदगी का रास्ता : मुक्तिबोध)

अशोक तिवारी आम जनता में व्याप्त भय का अनावरण करते हैं। करते हैं उसके कारणों का पर्दाफाश–

कई डर हैं
जो सालते हैं हमें
किसी–न–किसी तरह
अलग–अलग शक्लों में
हो जाते हैं स्थायी
और समा जाते हैं
आँखों की कोरों में
नज़रों के चौकन्नेपन में।
(समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च–अप्रैल 14 'डर' कविता)

जो डर गया, वह मर गया या जो डर गया, वह जी गया या फिर मर गया। तो डर से बचने का बचता है एक उपाय यथोचित, प्रतिकार। 'कार्य वा साधयामि शरीरं वा पातयामि' की हद तक। संस्कृत का श्लोक है–

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्याद्यथोचितम्।।

गफूर तायर बड़ा मौजू तर्क देते हैं कि हमारा स्वार्थ, हित पक्ष इतना प्रबल और जिद्दी हो गया है कि वह किसी प्रकार समझौता करने को तत्पर रहता है। उसे उचित, अनुचित, करणीय, अकरणीय के भेद से कतई मतलब नहीं है। चारों ओर, गली–बाजार, मॉल, घर, द्वार में बाजार का जादू बिखरा है। आदमी नपने, तुलने, बिकने को तत्पर है–

बढ़ रही खुदगर्जियाँ
महँगाई की तरह
हो तमन्नाएँ पूरी
कोई भी कीमत चुकानी पड़े
हर तरफ शामिल बाजार
नमक में आटे की तरह
(नमक में आटे की तरह, समावर्तन, अगस्त 15)

हनुमंत नायडू समकालीन सच एवं युगीन बोध के सच्चे प्रवक्ता हैं। ईमान बेईमानी का निमंत्रण हाथ में लिये फिरे तो फिर वक्त की बदतमीजी और मार सहने के अलावा हमारे पास विकल्प क्या बचा है भला?

बईमानी का निमंत्रण हाथ में ईमान के
बदतमीजी वक्त की हम सह रहे मन मार के।

लोग यहाँ सदा अपने को बेगुनाह साबित करने में लगे रहते हैं और अपना दोष दूसरों पर मढ़ने में। इस कला में जो जितना उस्ताद है, वही जिंदगी में उतना ही अधिक सफल है।

शामिल हैं सब गुनाह में, सब खून से रंगे,
बेकार ढूँढ़ना है यहाँ बेगुनाह को।
(समावर्तन अप्रैल 16, पृ. 55)

अशोक अंजुम बड़ी बात सहज ही कह जाते हैं। राजा को अपने राज्य से मतलब है यानी सत्ता सुंदरी के आगोश में वह निरंतर मस्ती में रहे। भाड़ में जाए प्रजा, मुल्क, शहीद की यादें–

रहे किस तरह राज अपना सलामत
है सदियों से ये राजधानी का संकट

डॉ. हनुमंत नायडू इससे भी अधिक धारदार वार करते हैं। गुलामी मिटी कहाँ, हाँ उसका रूप भले ही बदल गया। जो कल गुलाम था, वह आज भी गुलाम है, भले ही हर वर्ष मनाता रहे स्वाधीनता दिवस।

बाकी कितनी राह कहाँ पर मुकाम है
आकर जरा बताओ ये किसका निजाम है
सूरज तो उग गया है, अँधेरा कटा नहीं
पहले भी जो गुलाम था, अब भी गुलाम है।

अजगर की तरह फैला है बाजार मानो वह मुँह बाए सबको निगलने की प्रतीक्षा में बैठा है। लोग हैं कि उसकी साँस की धौंकनी से खिंचे जा रहे हैं उस ओर। मूल प्रत्यय है चीजों के लिए चीजों में बदलते मनुष्य का त्रासद परिणाम। बाहरी भूख का ऐसा जज्बा है कि उसने हमारी आंतरिकता को निगल लिया है। मनुष्य जीवन का मानो समूचा अर्थ, मकसद जैसे चीजों में ही समा गया है। पश्चिम से आता रंगीन धुआँ हमें लुभा रहा है लगातार। विश्वग्राम का आकर्षण चारों ओर है। इसलिए उसी फेर में पड़े हैं। परन्तु विडम्बना है कि उसका पता किसी के पास नहीं है। वह अपनी रिक्तता या अभाव का उस जीवनानुभव से ऊपर नहीं मानता, जहाँ एक खास तरह की गतिशीलता है।

'शाम को घर लौटे तो न जाने क्या–क्या सामान थे उनके पास। मेरे पास कुछ नहीं था। केवल एक अनुभव था। कंकड़ी और लहरों के संबंध से बना हुआ।'

(दिनभर : आम के पत्ते : रामदरश मिश्र)

ताजा पैदा हुआ बछड़ा जिंदा ही छोड़ दिया जाता है खौलते पानी में कि उसकी कीमत लगभग चार गुनी बढ़ जाती है। विवेकानंद की पंक्तियाँ यहाँ ध्यातव्य है–

और जिनका दावा है
खौलते पानी में जिंदा बछड़ा फेंक देने से
उसकी चमड़ी की कीमत
लगभग चौगुनी हो जाती है।
(खौलता पानी : विवेकानंद समकालीन भारतीय साहित्य मई–जून 2015, पृ. 190)

परन्तु विवेकानंद हताश, निराश नहीं होकर उस कोयले के छोटे–छोटे टुकड़ों पर ध्यान देते हैं, जो निरंतर टूटकर, खंड–खंड होकर लाल हो जाते हैं, तो सख्त लोहा जलकर लाल हो जाता है। चाहिए टुकड़ों का एकत्र होना, जलने के लिए समर्पित होना। फिर भयंकर से भयंकर आततायी मानवता का घोर शत्रु पता नहीं कहाँ नेपथ्य में छिप जाएगा और फिर आत्महत्या को विवश हो जाएगा।

इन विपरीतताओं, विषमताओं के बावजूद हम अपनी जमीन, परंपराओं और संस्कृति से जुड़े साहित्यिक मन, जिजीविषा की अंतरंगता में जीवन के रंग भरते रहें। थकें नहीं, हारें नहीं। निरंतर आशावादी हो बढ़ते रहें। चिरवियोगिनी के मन में भी मिलन की आशा बनी रहती है, फूल के जाले की तरह। भसृण कोमल, जो झट टूटकर बिखर नहीं जाता।

आशाबंधः कुसुमसहशः प्रायसो ह्यंगनानाम्।
(मेघदूत पूर्व : कालिदास)

भौंरा भी गुलाब की जड़ में महीनों छिपा रहता है, इस आशा से कि कभी तो यहाँ फूल खिलेंगे और वह मकरंद पान कर सकेगा।

एहि आश अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
होइहैं फेरि वसंत ऋतु, इन डारन वे फूल।।
(बिहारी सतसई)

इसी आशा के प्रदीप को जलाए रहते हैं धर्मराज (कुरुक्षेत्र) और इसी विश्वास पर टिकी है दुनिया, उनके समस्त क्रिया–व्यापार।

समीक्षा :

प्रेमचंद की कहानी

'दो भाई' का वर्तमान संदर्भ

अरुण कुमार वर्मा
व्याख्याता हिन्दी
रीवा, मध्यप्रदेश
मो0–9754128757

'दो भाई' कहानी कथा सम्राट प्रेमचंद की कहानी है। यह कहानी ग्रामीण परिवेश पर आधारित दो भाइयों के बीच ह्रास होते संबंधों की डोर को बयां करती है। गाँव प्रेमचंद के रग–रग में रचा–बसा है। इनकी कहानियाँ में गाँव के पात्र ही नहीं, गाँव के खेत, मेड़, खोर, ताल–तलैया, पोखर, ढोर तथा जानवर है। प्रेमचंद विजनरी लेखक थे। चार पीढ़ियों से लोगों को प्रभावित कर रहे हैं और आज भी उतने ही प्रासंगिक है, जितना आज का लेखक। ये उस जमाने में भी आज या उसके पार देख रहे थे। यही एक बड़े लेखक की पहचान है, जिसे हम किसी काल विशेष की सीमा में सीमित करके नहीं देख सकते। वे उस जमाने में भी 'मिस पप्पा' के द्वारा लिविंग रिलेशनशिप पर लिख रहे थे। वे कहानियों के माध्यम से यह दिखाना चाहते थे समाज कैसा है?कैसा होना चाहिए?और उसके लिए सार्थक सुझाव, उपाय एवं सक्रिय कदम भी उठा रहे थे। यही कारण है कि उनकी कहानियों का फलक बहुत विस्तृत है। वे आदर्श, नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों के लिए सदैव तत्पर रहते थे। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की अध्यक्षता करते हुए इन्होंने साहित्य के उद्देश्य पर प्रकाश डाला था–''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों पर प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।''

'दो भाई' संयुक्त परिवार में ढीले होते बंधनों की कहानी है। शहर से संयुक्त परिवार की चादर से ही दरक चुकी थी, लेकिन गाँव मान–सम्मान, स्वाभिमान और लोक रीति के चलते इसकी गाड़ी को खींच रहा था। प्रेमचंद संयुक्त परिवार के हिमायती थे। संयुक्त परिवार टूटने का दर्द इनकी कहानियों में परिलक्षित हुआ है। 'गोदान' में भी प्रेमचंद ने इसकी ओर ध्यान आकर्षित कराया है। होरी ने यह जानते हुए कि हीरा ने ही गाय को जहर दिया है, उन्होंने मुँह नहीं खोला कि मेरा भाई फँस जाएगा। 'दो भाई' कहानी केदार और माधव के टूटते रिश्तों को बयाँ करने के साथ वर्तमान में अधिकांश भाई के रिश्तों की गहराई की पड़ताल करती है। इन्होंने ग्रामीण जीवन से जुड़े छोटे–छोटे भावों की संवेदनाओं को संजोये हैं, जो प्रेमचंद जैसे लेखक के द्वारा संभव हो सका है। प्रेमचंद एक को सच्चरित्र और दूसरे को दुश्चरित्र दिखाने की परंपरा से अलग हटकर मूल समस्या को बहुत ही सूक्ष्मता से उकेरनेवाले लेखक हैं। चरित्रों की मनोवृत्तियों को बहुत ही सहजता एवं सूक्ष्मता से पकड़कर उसे दर्शाने का कार्य किया है। किसानी जीवन नायक, महानायक और धन्ना सेठों की कहानी नहीं है। न ही इसमें नगरीय जीवन की चमक–दमक है। अपनी छोटी–छोटी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए किसान अपना सर्वस्व लूटा देता है। विवेच्य कहानी केदार–चंपा, माधव और श्यामा के चरित्र की विवेचना से ज्यादा समस्या के मूल विन्दु को लेकर ताना–बाना बुना गया है। कहानी में केदार, चंपा और माधव अपनी–अपनी चालाकी से बाज नहीं आते हैं। एक तरफ केदार और चंपा माधव के घर हथियाने की फिराक में है, तो दूसरी तरफ माधव पैसा लेकर भी घर न खाली करने की चालाकी में है। इन छोटे–छोटे छल–प्रपंचों के तह में घोर अभाव की गाथा छिपी है। यही गाथा तो भारतीय किसानों की वास्तविक गाथा है। होरी को गाय और हामिद को चिमटा की अभिलाषा करोड़ों की अभिलाषा नहीं, उसकी जरूरतों की जायज से भी कम की माँग है। उसकी समस्याएँ बहुत बड़ी नहीं होती हैं, परन्तु उसके समाधान का न तो उसमें सामर्थ्य होता है और न ही तरीका। घर का सौदा हो जाने के बाद माधव की मनः स्थिति को देखिए–''माधव की इच्छाएँ पूरी हुई। उसने मैदान मार लिया। सोचने लगा मुझे तो रुपया से काम है, चाहे एक नहीं दस खाते में चढ़ा लो, रहा मकान वह जीते जी नहीं छोड़ने का।''

'दो भाई' कहानी क्षीण होते आपसी संबंधों की कहानी है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से केदार और माधव के बचपन के प्रेम से शुरुआत करते हैं। दोनों एक ही छाती का दूध पिए और एक साथ ही माँ की जाँघ पर बैठकर खाना खाए। जब वे नासमझ थे, तब एक को रोते देख दूसरा भी रोने लगता था। तब वे नादान, बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोते देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। वे समझदार और बुद्धिमान हो गये थे। जब उन्हें अपने–पराये की पहचान न थी। उस समय यदि छेड़ने के लिए अपने साथ ले जाने की धमकी देता तो दूसरा लेट जाता और उस आदमी का कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि एक भाई को मृत्यु की धमकी तो दूसरे के नेत्रों से आँसू न आते। अब उन्हें अपने–पराये की पहचान हो गयी थी। ह्रास होते संबंधों की पराकाष्ठा को जानवर से भी बदतर दर्शाया है–''केदार के दरवाजे पर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी संघ शक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है। दोनों एक ही जुए में चलता है। बस इनमें इतना ही नाता है। किन्तु अभी कुछ ही दिन हुए, जब इनमें से एक चंपा के मायके मंगनी गया था, तो दूसरे ने तीन दिन तक नाद में मुँह तक नहीं डाला, परन्तु शोक एक ही गोद में खेले भाई एक छाती से दूध पीनेवाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घर में रहना भी नहीं चाहते।''

प्रेमचंद पात्रों की छोटी–छोटी चालाकियों और उनके कांइयाँपन का वर्णन कर कहानी में सजीवता ला देते हैं। गाँवों में व्यक्ति यह चालाकी ज्यादातर अपनों से ही करता है। दूसरों के सामने उसका एक नहीं चलता, बल्कि दूसरों से किए गए नुकसान को सहजता से स्वीकार करता है। इससे ज्यादा वह कर भी क्या सकता है। केदार और चंपा की निगाह माधव के घर पर है। माधव की मजबूरी का फायदा उठाकर वे सस्ते में ही उसका घर हथियाना चाहते हैं। उनकी चपलता का उदाहरण देखिए–''केदार और चंपा ने एक दूसरे को मर्मभेदी नजरों से देखा और मन ही मन कहा, क्या आज सचमुच ही मन की प्यारी अभिलाषा पूरी होगी?परन्तु हृदय की यह उमंग मुँह तक आते–आते गंभीर रूप धारण कर गई। चंपा बड़ी गंभीरता से बोली, घर पर तो कोई महाजन कदाचित ही रुपये दे। शहर हो तो कुछ किराया भी आवे। घर गंवई में तो कोई सेंत में भी रहनेवाला नहीं।'' केदार और चंपा तो चालाकी में हैं ही, माधव भी चालाकी से बाज नहीं आता। गाँव की यह आम समस्या है। समस्या का कोई स्थायी हल न खोजकर छोटी–छोटी चालाकियों से काम चलाते हैं माधव का उदाहरण देखिए–''माधव को इन रहस्यमय बातों से सशंक हो गया। उसे भय हुआ कि ये लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ता के साथ अकड़कर बोला–और कौन–सी फिक्र करूँ?गहने होते तो कहता लाओ रख दूँ। यहाँ तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दस के लिए, क्या पचास के लिए। दोनों ही एक बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाए, तो यहाँ तक स्वीकार है, परन्तु घर भी बेचूँ और उस पर प्रतिष्ठा धूल में मिले, ऐसा मैं न करूँगा। केवल नाम का ध्यान है नहीं तो एक बार नहीं कर जाऊँ तो मरो कोई

क्या करेगा?और सच पूछो तो मुझे अपने नाम की कोई चिंता नहीं है।मुझे कौन जानता है?संसार में तो भैया को हँसेगा।'' नाम की चिंता आज भी गाँव की प्रमुख समस्या है। इसी नाम को नाक का प्रश्न बनाकर आज गाँव बहुत सारी समस्याओं से घिरा है।

'दो भाई' भले ही एक सदी पीछे की कहानी हो, परन्तु आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना तब रही होगी या कहीं उससे ज्यादा। आज भी केदार और माधव गाँव में उसी तरह से जीवित है, जैसे तब थे। विकास की चकाचौंध में गाँव की मूल समस्या जस की तस बनी है। स्वरूप में जरूर बदलाव आया है, परन्तु वैचारिक सोच वहीं है, उससे जरा से खिसकी नहीं है। वही झूठी शान–शौकत, झूठे मान–सम्मान का दंभ आज भी उनकी दुर्गति का कारण है। खेती उतना नहीं दे पा रही है, जितना उनकी आवश्यकताएँ हैं। किसानों के लिए सरकारी नीतियाँ भी उतनी कारगर नहीं बनी, जिससे उनमें परिवर्तन हो सके। ऊपर से बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रचार–प्रसार उन्हें अपने जाल में फँसाता जा रहा है। उनकी चालाकियाँ आर्थिक अभाव की कहानी है। रेहन लिखवानेवाले का नाम केदार वल्द शिवदत्त सुनकर माधव की आँखें डबडबा गयीं, केदार माधव की ओर देख न सका। उसका न देख सकना उसके अपराधबोध को दर्शाता है, परन्तु अभाव बस कुछ कर सकने की हिम्मत नहीं कर पाता। वह कोई धन्ना सेठ नहीं कि इतनी दिलेरी दिखा सके। उसने तो एक–एक कर ये पैसे जोड़े होंगे। यही तो किसान जीवन की वास्तविक गाथा है। केदार और माधव जैसे बहुत सारे सगे भाई सिर्फ नाम के भाई हैं। रिश्ते में न कसाव है न प्रेम, सिर्फ भाई के नाम की लाज है। प्रेमचंद लिखते है–''दोनों भाई जो किसी समय एक ही पलथी पर बैठते थे, एक ही थाली में खाते और एक छाती से दूध पीते थे, उन्हें अब एक घर में, एक गाँव में रहना कठिन हो गया है। परन्तु कुल की साख में बट्टा न लगे, इसलिए ईर्ष्या और द्वेष की धधकी हुई आग को राख के नीचे दबाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगों में अब भ्रातृ–स्नेह न था, केवल भाई के नाम की लाल थी। माँ अब भी जीवित थी, पर दोनों बेटों का वैमनस्य देखकर आँसू बहाया करती। हृदय में प्रेम था, पर नेत्रों में अभिमान न था। कुसुम वही था, परन्तु वह छटा न थी।'' इस बात की मार्मिकता आज के समाज में क्या अपना भाव खो चुकी है?आपसी संबंधों में गिरावट क्या वर्तमान की समस्या नहीं है?आज हम राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम की बात करते हैं, बिना भ्रातृत्व प्रेम के क्या यह राह संभव है?

'दो भाई' कहानी पढ़कर आज भी मन पसीज उठता है। छोटे किसान और मजदूर का दायरा वहीं तक है, जहाँ पहले था। संबंध है पर उसके मायने बदल गये हैं। वर्तमान में साझी समझ का विकसित होना आवश्यक है। आपसी द्वेष मानवी गुण है, जिसे स्वीकार करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–''माधव को धन–संपत्ति की लालसा थी और केदार को पारिवारिक सम्पत्ति की अभिलाषा। भाग्य की इस कूटनीति ने शनैः शनैः द्वेष का रूप धारण किया, जो स्वाभाविक था। इस द्वेष के कारण चंपा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओं की भाँति अलग हो गयी। उस दिन एक ही घर में दो चूल्हे जले, भाइयों ने दाने की सूरत न देखी।'' अलग होने पर यह दुख दोनों भाइयों के प्रेम को दर्शाता है, परन्तु अलग हो जाने के बाद प्रेम की यह नदी इतनी सूखी कैसे हो जाती है, यह विचारणीय प्रश्न है। इससे उबरने की आवश्यकता है। गाँव में आज भी एक कहावत प्रचलित है–बाँटा पूत पड़ोस बराबर' इस कहावत के सूत्र केदार और माधव की कहानी से जुड़े हैं। प्रेमचंद की अनेक कहानियों में यह चित्रण विद्यमान है। अनेक कलावती को आज भी माथा ठोंकते और ऐसा स्मरण करते देखा जा सकता है–''उस दिन का स्मरण हुआ, जब ऐसा ही सुहावना प्रभात था और दो प्यारे–प्यारे बच्चे उसकी गोद में बैठे उछल–कूद कर दूध रोटी खाते थे, उस समय माता के नयनों में इतना अभिमान था। हृदय में कितनी उमंग और कितना उत्साह! परन्तु आज आह! उस नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक संताप। उसने पृथ्वी की ओर देखकर कातर स्वर से कहा है–नारायण क्या ऐसे ही पुत्रों को मेरी कोख में जन्म लेने थे।''

निष्कर्षतः 'दो भाई' कहानी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितना कि रचनाकाल के समय रही होगी। पूरा घटनाक्रम ऐसे चलता है, जैसे वर्तमान समाज की झाँकी देख रहे हों। देश–काल जरूर बदला है, परन्तु मूल कथा जैसे आज की हो और इसकी संवेदना आज भी पाठक को भाव विभोर कर देती है। प्रेमचंद कालजयी रचनाकार है। किसान जीवन का एक–एक कोना इतनी सूक्ष्मता से देखा और महसूस किया है कि पाठक सहजता से अपना तादात्म्य स्थापित करता है। इनकी कहानियों का फलक बहुत ही विस्तृत है और लोकदृष्टि बहुत ही विशाल है। गाँव का वह अमर गाय धन्य है। इनकी एक–एक कहानियों को पढ़कर आश्चर्य होता है कि इतने सारे अनुभव और उद्भावनाएँ कैसे इनमें समाहित थी। भारत गाँवों का देश है और गाँवों से लोगों का पलायन कस्बों और शहरों की ओर हो रहा है। ग्रामीण संस्कृति आज संकट में है। ऐसे में प्रेमचंद के दृष्टिकोण का महत्व और भी बढ़ जाता है।

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिन्हा
मुंगेर
9430450098

किसी की आँख में इक घर तलाशते रहिए
बहुत हसीन–सा मंजर तलाशते रहिए
जहाँ तलक भी ये सहरा दिखाई देता है
वहीं तक अपना समुंदर तलाशते रहिए
मिलेगी आपको मंजिल तो अपनी कोशिश से
ये और बात कि रहबर तलाशते रहिए
हमें शिकस्त न देगी समय की ये उलझन
नज़र से मील का पत्थर तलाशते रहिए
बचा हुआ है हमारे लिए यही अब तो
हथेलियों पे मुकद्दर तलाशते रहिए।

क्या ही अच्छा वो कर गया चुपचाप
मेरे दिल में उतर गया चुपचाप
मुश्किलों का जवाब देने में
एक अरसा गुज़र गया चुपचाप
तल्ख़ यादों की खिड़कियाँ खुलते
इक नशा था उतर गया चुपचाप
चाँद को चाँद कह दिया जबसे
घर उजालों से भर गया चुपचाप
क्या अदालत उसे सजा देगी
खुदकुशी कर जो मर गया चुपचाप

क्या है अपने वक़्त की रफ़्तार पढ़िये
खून से तर आज का अखबार पढ़िये
इश्क़ के ज़ज्बों को भी इक बार पढ़िये
खोलिए दिल ये खते–बीमार पढ़िये
जाने कितने दाग़ चेहरे पर मिलेंगे
आईने में अपना भी किरदार पढ़िये
इक नए अंदाज़ भी तहरीर हैं हम
आप हमको भी कभी सरकार पढ़िये
रात के किस्से बहुत ही पढ़ चुके हैं
आइये अब सुबह के आसार पढ़िये।

समीक्षा

मंगेतर का मोबाइल : संघर्ष और संवेदना का कहानी–संग्रह

रामयतन यादव
फतुहा, पटना
7261039059

निरंतर बदले मूल्यों और संदर्भों के साथ आभा लिए स्थितियों को चित्रित करते हुए हिन्दी कथा सृजन को समृद्ध करने में अशोक प्रजापति के योगदान को रेखांकित किया जाना आवश्यक है। ये सहज चेतना के संवेदनशील कथाकार हैं। इन्होंने विचार संघर्ष और संवेदना के स्तर पर स्वयं को समृद्ध किया है। कथा सजृन के वर्तमान परिवेश में बहुत ही आश्चर्यजनक तरीके से अशोक प्रजापति अपनी पहचान कायम कर रहे हैं। इस कथाकार की कहानियों को पढ़कर सहज ही इस बात की पुष्टि हो जाती है कि इनके भीतर समकालीन सामाजिक चेतना के आरोह–अवरोह से उत्पन्न स्थितियों और चुनौतियों को रचनात्मक तरीके से देखने का कितना प्रभावकारी दृष्टिकोण मौजूद है। कल्पना और यथार्थ का जीवंत चित्रण कहीं गहरे तक संस्पर्श करता है।

सद्यः प्रकाशित 'मंगेतर का मोबाइल' अशोक प्रजापति की दूसरी कथा कृति है। इसके पूर्व 'ओपेरा हाउस' के जरिए इनकी कई श्रेष्ठ कहानियाँ आ चुकी हैं। 'मंगेतर का मोबाइल' इनकी कथात्मक अभिव्यक्ति की विकास प्रक्रिया के तौर पर देखा जा सकता है। ऐसा इसलिए कि इसमें भाषा और विचार की समृद्धि को पूर्व की कथाकृति की अपेक्षा अधिक विस्तार मिला है। गाँव–गिराम से लेकर महानगरीय संस्कृति और संस्कारों में जो भी उतार–चढ़ाव हुआ है या फिर हो रहा है, उन्हें खूब बारीकी से अभिव्यक्त किया है। अशोक प्रजापति का कथा सृजन इस अवधारणा को संपुष्ट करता है कि जो रचनाकार आम आदमियों की अनुभूति की संस्कृति और अभिव्यक्ति के रूप प्रकारों से जितनी गहराई से जुड़ा होगा, उसकी रचना उतनी ही स्वाभाविक, जीवंत और सम्प्रेषणीय होगी।

विषय वैविध्य के साथ अशोक प्रजापति के सामाजिक सरोकार सघन किन्तु सहज है। कथा साहित्य सृजित करने की दृष्टि से समीक्ष्य संग्रह की कहानियाँ उदाहरण के तौर पर रखी जा सकती है, उनमें 'दीमक लगे गाँव', 'कानन कस्बे की चीखें', 'कर्ज के दस रुपये', 'आर–पार'। 'अपने–अपने स्वर्ग' कुछ वर्ष पूर्व केदारघाटी में घटित अत्यंत दुखद दुर्घटना पर केंद्रित मार्मिक कहानी है। भीषण प्राकृतिक आपदा का जीवंत दृश्य गहरे तक हिलाकर रख देता है।

समाज के चेहरे पर बदनूमा दाग की तरह यहाँ–यहाँ उगे 'रेड लाइट एरिया' में जिस्मफरोशी के लिए विवश स्त्रियों की दर्दभरी जिंदगी का ऐसा करुण दृश्य इस कहानी में उपस्थित किया गया है कि मन उद्वेलित हो उठता है। वेश्यावृत्ति की गलीज जिंदगी के बीच से बेला अपनी बेटी को पढ़ा–लिखा कर बेहतर सामाजिक जिंदगी की ऊँचाइयों तक पहुँचाने में कामयाब होती है। वेश्या जीवन पर अनेक कथाकारों ने कहानियाँ लिखी हैं, लेकिन अशोक प्रजापति की यह कहानी 'कानन कस्बे की चीखें', जीवनोन्मुखी संघर्ष से ओत–प्रोत अत्यन्त ही प्रेरक एवं सकारात्मक है।

अशोक प्रजापति की रचनाधर्मिता की खासियत है कि तमाम सामाजिक विसंगतियों, विरोधाभासों और विद्रुपताओं के बीच भी जीवन की ऊर्जा क्षरित होने नहीं देते हैं। एक स्वस्थ समाज निर्माण की चेतना को संघर्ष की धार देते हुए जीवन के प्रति गहरी आस्था और विश्वास को ठोर आधार प्रदान करते हैं। 'आर–पार' के जरिए गाँवों में सामंती जीवन मूल्यों के टूटने कमजोर पड़ते जाने और नये जीवन मूल्यों की स्थापना के क्रमिक विकास को तथ्यात्मक ढंग से रखा गया है।

'कर्ज के दस रुपये' और 'जामुन का पेड़' ग्रामीण पृष्ठभूमि की बेहतरीन कहानियाँ हैं। ग्रामीण पृष्ठभूमि की जितनी भी कहानियाँ अशोक प्रजापति द्वारा लिखी गयी हैं, उनमें गाँव का ओढ़ा हुआ यथार्थ नहीं, बल्कि जीया हुआ यथार्थ अपनी पूरी संवेदना के साथ उकेरते हैं। वे घर आँगन और खेत–खलिहान में उगी हुई दूब की तरह का अहसास दिलाती है।

'प्रथम स्पर्श' कहानी स्त्री जीवन के संघर्ष की जीवंतता के साथ उद्घाटित किया गया है। घनघोर गरीबी में पली–बढ़ी सुमन के जीवन संघर्ष और परिवार के प्रति समर्पण का भाव पाठकों को गहरे तक उत्प्रेरित करता है। कथ्य, शिल्प एवं भाषा के स्तर पर ऐसी जीवंत कहानियाँ कभी–कभी पढ़ने को मिलती हैं।

'मंगेतर का मोबाइल' आधुनिक जीवनधारा की किंचित् विडम्बनापूर्ण स्थिति की कहानी है। 'ग्लोबल विलेज' की विद्रुपताओं को समेटे हुए एक खास किस्म की बेचैनी पैदा करने में यह कहानी सक्षम है।

'नीला मर्तबान' एक नन्हीं बच्ची नीलू के जरिए प्रदूषण जैसे ज्वलंत और वैश्विक मुद्दे को उकेरती एक सशक्त कहानी है।

संपूर्णताओं में कहें तो कथा सृजन के सहारे अपने समय का इतिहास अशोक प्रजापति की कहानियों में संरक्षित हुआ है।

ढूँढ ही लेगा

शब्द
मौन हो गए
सुबह के उजाले में
कान में फुसफुसाया सूरज
जब ढलान पर था
क्षितिज पर बन गयी
पगडंडी
आहिस्ता–आहिस्ता
सप्तरंगी किरणों से
नदी में आकाश
वृद्ध के थके कंधे पर
विश्वास भरा हाथ

उजरे उपवन में
खिल गए फूल
बिखरने लगी
संवेदनाओं की गंध
चिरयों का शोर
अस्तित्वान
खुशगवार मौसम
ढूँढ़ ही लेगा
विश्वास
जीवन अपना
जवाब।

सही परिभाषा

राजेन्द्र परदेशी

एक
फूँकी हुई लाश
कुछ लोग
आस–पास
बहती हुई गंगा
नदी में नाव
जिसका माझी
पार नहीं उतारता
बल्कि
बीच धारा में
डूबो देता है
पंचतत्त्व को
और माँग लेता है
मुँह माँगा उतराई
कुछ सगे संबंधियों
जो हमेशा के लिए
अपनी माँ जैसे
नाते को
सील कर जाते हैं
अनिश्चित काल तक
किसी चतुर गाइड के
वशीभूत होकर
और
ऐसे घाट परे
जहाँ जीवित प्रत्येक व्यक्ति
अपने आपको
मुर्दे से भी कहीं
अधिक मृत पाता है
फिर समझने लगता है
सही परिभाषा
घाट माझी
और गंगाजल की।

लघुशोध

कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र

डॉ. कल्पना दीक्षित
कोलकाता (प.बं.)
9007528933

कवि महान और पुष्ट विचारों को धारण करने में समर्थ है, इसीलिए कवि का भावावेग प्रेरित हो सका है। इस महाकाव्य में विचारालंकार इतिहास की भीतरी परतों से निःसृत हैं। कलापक्ष की दृष्टि से यह अभिजात्य महाकाव्य है, क्योंकि इसमें शब्द-चयन, बिंब-विधान तथा शब्द-समृद्धि अन्तर्भावित है। कवि हृदय गरिमामय और सर्वोच्च है, तभी ऐसी कृति आकारित हुई है, जिसमें वर्तमान की आँखों ने इतिहास में विषयों-विचारों हेतु पुरातात्विक उत्खनन किया है।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ ही दिग्भ्रमित समाज को दिशा भी देता है। डॉ. अमरेंद्र ने महसूसा होगा कि उनके विचार समाज को सोद्देश्य कर्मशीलता का पाठ सिखा सकते हैं, तभी उन्होंने इतिहास के अंधेरे की यात्राा की होगी। मस्तिष्कीय प्रौढ़ता हेतु ऐतिहासिक चेतना आवश्यक है। कवि ने परम्परा के आश्रय में अपनी संवेदनाओं को विस्तार दिया इतिहास-ग्रन्थ महाभारत की आंतरिक-भित्ति के विस्तार में ही कवि को सूझा कि उसे क्या करना चाहिए, किस प्रकार अपनी विचार-संवेदना को नया रूप देना चाहिए। ऐतिहासिक पृष्ठों में ही संकेतित रहस्यों के तिमिर में, कवि-दृष्टि आलोकित हुआ और यह कृति तभी अंकुरित हुई है। अतीत को वर्तमान में देखना कवि की मौलिकता है। कवि ने परम्परा को आत्मसात करके औचित्यसापेक्ष नवनवोन्मेष किया है, इसी उन्मेष में कवि-व्यक्तित्व समर्पित है। कवि ने स्वयं से(अपनी चेतना से) बातें करते हुए इतिहास की खोजी-यात्राा की। इसी यात्रा-अनुभव को पाठकों से बताते हुए वह स्वयं वक्ता न होकर पात्रों के माध्यम से बोलने लगा। इस महाकाव्य की विलक्षणता यह है कि इसमें स्रोत-ग्रन्थ महाभारत के विविध प्रसंगों को सूत्रा रूप में लिया गया है। इन्हीं सूत्रों की व्याख्या में यह क ति परिपुष्ट हुई है। व्याख्या- ौली में अवान्तर प्रसंगों का संयोजन करते हुए कवि एक कुशल शिल्पी दिखता है। पात्रों की मानवीय प्रबुद्धता को गढ़ा है कवि ने। कवि ने वर्तमान लघु-मानव को अतीत के महामानव का दिग्दर्शन करवाया है, जो कि सोद्देश्य है। मानवीय-प्रबुद्धता इस कृति में स्वतः स्फुरित है। यह एक ऐसा साहित्य है जो प्रत्येक व्यक्ति को स्पर्शित करते हुए उसे जीने की कला सिखा जाए...! यह कृति अप्रत्यक्ष रीति से ज्ञानराशि है, और इसका लक्ष्य आनन्द है। कवि भावक को प्रकृति की ओर उन्मुख करते हुए उसे कृत्रिमता से मुक्त करता है और जीवन की सरलतम व्याख्या करते हुए रूढ़-बेड़ियों से मुक्त भी करता है। बाह्य-जगत के उलझाव से जूझने हेतु अंर्तजगत के सुलझाव का रहस्य है इस अमर क ति में। प्रबोध-पर्व आत्मप्रबन्धन हेतु चेतना के स्तरों से साक्षात्कार करवाता है।

कर्ण द्वारा कवच-कुंडल दान करने के पश्चात धर्मपिता अधिरथ धन्वंतरि से उसकी चिकित्सा करवाते हैं। इतिहास अतीव व्यावहारिक दिखता है ऐसे प्रसंगों में, जो दुश्वारियों में यह सुझाता जाता है what next'? बौद्धिक विश्लेषण ाक्ति से ही कर्मों का कुशलतापूर्वक सम्पादन सम्भव है। समझ के विस्तार में ही नई राह खुलती रहती है, तभी कर्ण अपनी मृत्यु के ठीक पहले तीर के माध्यम से पत्नी वृषाली के लिए पत्रा भेजता है।

बिना किसी टकराव के नित-नवीन सृजनात्मकता है इस काव्य में....! इतिहास के अंधेरे को उजागर करने में कवि ने किसी विध्वंस का सहारा नहीं लिया, अपितु दृढ़ और घने प्रसंगों की व्याख्या करते गए हैं और तमाम नए प्रसंग नवकिसलय की तरह स्वतः उजाले की राह पकड़कर पल्लवित हुए। मानवता के वाद में यह मानवीयता का विकास ही है। जिसमें अंतर्दृष्टि की विलक्षणता ने नवसन्धान किया है। अतीत का यह सन्धान मन-अन्तर्मन-बुद्धि की त्रिापुटी के लय होने पर उदित कवि-विवेक से ही सम्भव है।

क्षमा अंतर्मन की वह शक्ति है जो स्वयं को प्रतिशोध से विलग करती है, कर्ण द्रोपदी को स्वयंबर वाली घटना के लिए क्षमा कर देता है। कर्ण की चिंतन यात्राा नारी-मन का वातायन झांक लेती है। कर्ण मान लेता है कि द्रौपदी को यह ज्ञात हो गया हो गया कि "मैं स्वयंवर में उसे विजित करके दुर्योधन को सौंप दूँगा। मेरे इसी दुराग्रही मनोभाव को भांपकर कर ही उसने मेरा अनादर किया होगा। शीघ्रता में द्रौपदी कुछ और नहीं सोच पाई होगी।" कर्ण का यह अनुमानित बोध स्वयं उसे लघिमा की सिद्धी देता है, साथ ही नारी को शब्द-बाण प्रयोग के कारण लांछित होने से बचा भी लेता है। कुंती के सौर-गृह का स्वप्न प्रसंग कवि को महामानव बना देता है। इसमें किसी भी विसंगति के लिए कोई भी मनुष्य जिम्मेदार नहीं है अपितु Invisible Hand (एडम स्मिथ की अवधारणा) से ही समग्र संचालित है।

इस कृति के मर्म में कला का उद्देश्य मनोरंजन से ऊपर है। कला मनुष्य की वास्तविक विकास-यात्राा को गति देती है। सुविधाओं के लिए मिटाना/तोड़फोड़/विरोध आव यक नहीं है, व्यक्तिगत सुख के लिए ए.सी. चलाकर पर्यावरण को और अधिक गरम करना मानवीयता की जय नहीं है। इतिहास का यह सन्धान किसी वाद या आंदोलन से प्रेरित नहीं है अपितु समष्टि-हित के लिए व्यष्टि-कवि ने अपना सर्वस्व अर्पित किया है।

तनाव और अनहोनी के बीच चल रहे और पल रहे अंतर्द्वंद्व में बातें साझा कर लेना सहायक होता है, इसी प्रसंग में कर्ण और पुनर्नवी की वार्ता स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सौंदर्य को मुखरित करती है। पति-पत्नी परस्पर पूरक हैं, इस रिश्ते की सुंदरता का कारण ही सौंदर्यशास्त्रा है। कवि ने इस प्रसंग में पुनर्नवी द्वारा कर्ण के मनोभावों को भांप लेने का वर्णन करके रिश्तों का व्यापक सौंदर्यीकरण किया है। कर्ण मनोभावों, चिंताओं को अनावृत कर देता है..... पत्नी से सबकुछ साझा करता है। राजनीतिक दुश्चक्रों में पत्नी सुझाव देने वाली सचिव ही नहीं अपितु मन के भार को समो लेने वाली सहचरी भी है।

डॉ. अमरेंद्र ने अतीत को वर्तमान की दृष्टि से देखा है, समस्याएं, संभावनाएं और सम्बन्धों के उलटफेर में कर्ण-काव्य एक शुचिदीप है। इस काव्य की अंतर्वस्तु में जीवन को जीने योग्य बनाए रखने के सूत्रा निहित हैं। इतिहास के अंधेरे को दिव्यदृष्टि से देखना ही कवि की कवित्व-शक्ति है। इसी कवित्व-शक्ति में अपूर्व कथावस्तु की निर्मिति हेतु नवनवोन्मेष की अपार संभावनाएं हैं, तभी तो महाभारत के विविध प्रसंग नवीन अवान्तर कथाओं के साथ व्याख्यायित हुए हैं। भेदनीति की बारीकी में कृष्ण कर्ण के स्थाई भाव उत्साह को स्पंदित करते हुए कहते हैं कि–"भीष्म पितामह के नेत त्व में जब तक युद्ध चलेगा, तब तक तुम युद्धभूमि में नहीं उतर सकोगे और वीरत्व उफनाता रहेगा। अतः भीष्म के नेतृत्व तक पाण्डवों की तरफ से लड़ो उसके बाद कौरवों में मिल जाना।" यह घात वीर योद्धा के मनोविज्ञान की नैतिकता को जांचता है, कर्ण इस परीक्षा में विचलित नहीं होता। मित्रा हेतु उसकी नैतिकता अडिग है। नवीन अवान्तर प्रसंगों की उद् भावना में इतिहास से मुक्ति का उद्देश्य नहीं है, अपितु इतिहास में मानवीयता के अस्त्र से कवि-विवेक विध्वंस पर काबू रखने का प्रयास की सफलतम कोशिश करता है।

कर्ण के हस्तिनापुर जाने पर वृषाली अंगप्रदे ा का प्रशासन सम्भालती है, यह सशक्तीकरण किसी वाद अथवा आंदोलन से प्रेरित नहीं है बल्कि स्त्राी-शक्ति का सहजतम अनुप्रयोग है। काव्य-लेखन में जागृत कवि के अवचेतन

मन में सजग कवि-विवेक मानवीयता से नवनिर्माण का सन्धान करता हुआ दिखता है। मानव के समझ/अवबोध का सुलझा हुआ अपार विस्तार ही इस काव्य के उद्देश्य का मर्म है। इतिहास में समस्या दिखलाने से, शोर मचाने से जिए जाने की सरसता रिस जाती है। इस काव्य में इतिहास में जीवंतता पाकर वर्तमान को सहजतापूर्वक स्वीकार करते हुए बोझिल विसंगतियों से मुक्ति का मंत्रा निहित जहाँ मूल महाभारत के मर्म में सब मिटा देने का भय है, वहीं कर्ण काव्य में रूढ़ शक्तियों में ही नवनिर्माण करते रहने का स्वप्न साकार हुआ है, अतः यह अर्वाचीन महाभारत है। अतीत की वर्तमानता में मनुष्य को अपनी ही क्षमताओं के विस्तार और सीमाओं का अतिरेक करते रहने की अद् भुत कला का विलास है इस कृति में। सकारात्मक चिंतन की व्यापकता निराशा अंकुरित ही नहीं होने देती। डॉ. अमरेंद्र ने इतिहास के पुनर्लेखन की नवीन पद्धति का सूत्रापात किया है। अपनी मातृभूमि-केंद्रित प्रेम और आत्मीयता के वर्णन में अंगप्रदेश की महिमा-गाथा कहते हुए राष्ट्रीयता का आह्वान है यहाँ। परा-ऐतिहासिक अर्थात् इतिहास की तह में अवलोकन करते हुए इतिहास से परे जाने की क्षमता को कवि ने अपनी दिव्यदृष्टि के माध्यम से विकसित किया है। इतिहास अतीत और वर्तमान का ही लिखा जाता है, डॉ. अमरेंद्र ने ऐसा इतिहास लिखा है जिसमें भावी पीढ़ी में भी नवचेतना जगाने की औषधि है। कर्ण मानवीयता का एक सशक्त प्रतिनिधि है। मन के ऊहापोह में सम्भावित परिस्थितियों को सामने लाकर उसे सुनिश्चित बनाकर स्वयं को संतुलित रखने की कला है इस महामानव में। इस महाकाव्य के आश्रय में सांस्कृतिक मूल्य और लोककथाएं जी उठी हैं।

कवि ने कर्ण के जीवन-दर्शन-रस में डूबकर अपने आसपास की वास्तविक दुनिया को समझते हुए स्वयं को अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया है। मुक्तिधर्मी व्यक्तित्व के रूप में कर्ण को गढ़ने में कल्पना द्वारा एक ऐसी दुनिया का निर्माण किया है जो वास्तविक दुनिया(नियतिकृत नियम) की दुश्वारियों से मुक्ति की सुगम राह दर्शाता है।

कर्ण महाकाव्य का उद्देश्य महाभारत के महत्तवपूर्ण पात्रा के जीवनधारा की काव्यमय प्रस्तुति(जनभाषा हिंदी में) मात्रा नहीं अपितु वर्तमान पीढ़ी और भावी सन्तति को मानवीय व्यक्तित्व की व्यापकता का बोध कराते हुए मनुष्य के अंतर्मन की दृढ़ता और लचीलेपन के स्तरों को समझाना है। कहीं-कहीं कर्ण एक प्रतीक बन जाता है और इस प्रतीकात्मक चरित्र में आज के युवाओं के विविध चेहरे दिखने लगते हैं। पाठकों और सहृदयों हेतु कर्ण के व्यक्तित्व का सभी आयामों से बोध के उद्देश्य में ऐतिहासिकता के सम्बल के सहारे सामाजिकता की सतत रक्षा होती रहने की दृष्टि है।

महाभारत इतिहास ग्रन्थ है और डॉ. अमरेंद्र कवि हैं। महत्तवपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों की यथास्थिति में ही कवि-दृष्टिकोण ने नव-इतिहास लिखा है। तथ्यों की विस्तृत व्याख्या ने कवि को साहित्यिक इतिहासकार की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है। ऐतिहासिक रहस्यों का उद् घाटन में कवि ने अपनी जीवन-द ष्टि को संयोजित किया है। कवि के लिए सूर्यपुत्रा कर्ण मनुष्येतर नहीं है। ऐतिहासिक वाक्जाल से मुक्त यह काव्य मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षी होने से बचाता है और आत्मा को तेजोदीप्त करता है।(परशुराम प्रसंग, उदाहरण)

इस काव्य में मनुष्य की संवेदनशीलता गतिशील दिखती है, हृदय परदुःखकातर और भावुक बन जाता है, बदले की भावना मनुष्य की जययात्रा में बदल जाती है। कर्ण का अर्जुन से प्रतिशोध का मूलकारण खांडव-वन का दाह है। मनुष्य को प्रकृति-शोषित नहीं बनना चाहिए यह कर्ण का दर्शन है। एक तरफ अंगप्रदेश और चम्पा प्रान्त के प्रकृति-चित्रण में कवि आज का कालिदास बन गया है तो दूसरी तरफ खांडव-वन के जलने का क्षोभ कवि को दग्ध किए जा रहा है। प्रकृति-पुरुष डॉ. अमरेंद्र मनुष्य को एक प्राकृतिक इकाई के रूप में ही स्वीकारते हैं, जिसमें उसे नैसर्गिक सौंदर्य को दूषित करने और विनष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है।

कर्ण का जीवन महानता की त्रासदी नहीं अपितु मनुष्य की अप्रतिहत विजययात्रा है। मनुष्य का विकास उपलब्धियों का बटोर नहीं है, अपितु मानवीयता का उत्कर्ष अनवरत चलते रहना ही वास्तविक विकास है। कर्ण की दोनों पत्नियां वृषाली और पुनर्नवी चीर और चानन हैं। चीर और चानन अंगप्रदेश की प्राचीन जीवनदायिनी नदियां हैं, जिनसे जीवन अभिसिंचित है। ये दो स्त्रियां न तो गृह-कलह को जन्म देती हैं और न ही गृह-दासता तक सीमित रहती हैं। जटिल गृहस्थी की तरह ही अंगप्रदेश का प्रशासन सहजता और कुशलता से संभालते रहना ही इन महिलाओं का सशक्तिकरण है। कवित्व अनिवार्य रूप से सत्य का साक्षात्कार करवाता है। कर्ण महाकाव्य सभ्यता की परिधि तक विस्तारित है। यह काव्य जीवनयात्राा में मुक्ति हेतु प्रसाधन तुल्य सेवनीय है। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ ही दीपक भी है। इस कृति के माध्यम से मौन इतिहास में कवि-दृष्टि बोलती हुई दिखती है। इस कृति के सन्दर्भ में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियां सार्थक हो गई हैं–

है अंध सा अंतर्जगत कवि-रूप सविता के बिना।
सद् भाव जीवित रह नहीं सकते सु-कविता के बिना।।

- भारत भारती

कर्ण महाकाव्य की समग्रता में राष्ट्रवाद, सुधारवाद, आधुनिकीकरण और समाजवादी सिद्धांत निहित हैं। मानव-विवेक धार्मिक-रूढ़ियों और लोक-आस्था से जुड़कर(प्रारब्ध को स्वीकार करके) वर्तमान को सहनशील बना लेता है। सहनशीलता जीवनव्यवस्था में विचलन नहीं आने देती। चिंतन प्राचीनता से संश्लिष्ट होकर जब गतिशील होता है तब अतीत प्रासंगिक बन जाता है, और आधुनिकीकरण की जड़ों को दृढ़ता मिलती है। अतीत की जड़ों का मजबूत विस्तार चिंतन को ऊंचा उठाते हुए सघन बनाता है।

समझ जब साम्राज्यवाद की नीतियों का अवबोध करती है, तब मातृभूमि का प्रेम जागता है जो कि राष्ट्रवाद का मूल हैं। त्रिकालदर्शी कवि का इतिहास में नवनवोन्मेष ऐतिहासिक उपलब्धी है। कवि-विवेक इस कृति में महनीय है, वैयक्तिक संघर्ष में विवेकबुद्धि (wisdom of Brain and wisdom of mind) ने इतिहास में लौटकर जीने की सुगम राह बनाई है। यह निर्मिति भावी पीढ़ी को जीवन जीवन्ततापूर्वक जिए जाने का सलीका सिखाने में समर्थ है। यहाँ कवि-विवेक में जो व्यापक सुधारवाद की शिल्पकारी है, राष्ट्रवाद का आह्वान है और आधुनिकीकरण की संस्थापना है उसमें कोई टकराव नहीं है। टकराहट और ध्वंस के बिना विकसित हुआ नवसिद्धान्त मानव-मेधा के उत्कर्ष का आधायक है। कवि-विवेक का यह नव-उन्मेष दुनिया में अब तक मान्य नवजागरण की सीमाओं का अतिरेक किया है। इस महाकाव्य के प्रणयन में कर्ण(स्वयं कवि) ध्वंस रहित वाद का नेतृत्व कर्ता वाहक है। नवजागरण की अंतर्धारा में मानवधर्म प्रतिष्ठापित है, इस विलक्षण नवजागरण में जनजातियों की स्वतंत्राता को स्वीकारा गया है। यहाँ किसी को मुक्ति दिलाने का ढोंग/स्वांग नहीं है, अपितु स्वतंत्रातापूर्वक जीवनयापन में सबकी हिस्सेदारी है। आक्षेपों के जाल में उलझने की बचकानी बातों से मुक्त है यह काव्य। यहाँ आदिवासियों को आत्मपहचान के लिए संघर्ष/धरना/प्रदर्शन आदि प्रसंगों से हटकर उनकी स्वतंत्रा, विलक्षण जीवनशैली और प्रकृतिप्रियता को स्वीकृति मिली है, जिससे टकराव/उलझाव और द्वंद्वमें समय की वंचना नहीं होने पाती।

इस महाकाव्यात्मक नव-इतिहास में मानव-मूल्यों को सहेजते हुए

काव्य-मूल्यों की व्यापक मूल्य प्रणाली स्थापित है। अपरिणीता कुंती का बक्से में बन्द करके नवजात शिशु को दहा देना जहाँ मातृत्व की महिमा को दूषित करता है वहीं कवि-दृष्टि में जाग्रत विवेक कुंती के मनोभावों में मातृत्व-दायित्व पूर्ण निर्वहन है।

सूतपुत्र राधेय कर्ण जातिहीन नहीं है, अपितु मानवीय इकाई की निम्नता की व्यापक महत्ताा को विस्तार से बनाने और बताने के लिए है। जाति एक मनोवैज्ञानिक व्याधि है। सामाजिक व्यवस्था में जातीय-संरचना को परत-दर-परत समझकर 'मानव-जाति ही सत्य है' यह मर्म समझ जाना ही इस व्याधि की औषधि है।

इस कृति में कवि ने प्रतिभा की परिभाषा को सार्थक बना दिया है। आचार्यों ने प्रतिभा को अपूर्व वस्तु निर्माण करने वाली प्रज्ञा और नवनवोन्मेष शालिनी कहा है, प्रतिभा के ये विशेषण काव्यजीवन की प्रयोगशाला सफलता पाते हुए दिखाई देते हैं। व्युत्पत्ति की निपुणता से कवि महाभारत में प्रविष्ट हुआ है और सतत अभ्यास से सूक्ष्मावलोकन किया है। परदे के पीछे, झीने काल में विस्तृत इतिहास देखते हुए कवि, परम्परा की चुनौतियों को जीतते हुए मन की दृष्टि नव-सृजन किया है। कवि की साधना में काव्य के हेतु चरितार्थ हो उठे हैं। मनुष्य जेता बन गया है। अर्नेस्ट हेमिंग्वे की कहानी 'ए ओल्ड मैन इन द सी' की कथावस्तु इस काव्य के विश्लेषण में अतीव प्रासंगिक है। एक बूढ़ा मछुवारा प्रतिदिन समंदर में मछलियां पकड़ने जाता है और खाली हाथ लौटता है। लोग उसका उपहास करते हैं, वह बेपरवाह होकर जाल लिए समंदर को टटोलता रहता है। चौरासवीं बार उसे पहली दफा सफलता मिलती है और एक बड़ी शार्क जाल में फंस जाती है। वह जैसे-तैसे धार से जाल को घसीटते हुए किनारे तक पहुँचने की कोशिश करता है। किनारे पर पहुंचते-पहुंचते बहुत सारी छोटी मछलियां शार्क को लगभग खा चुकी होती हैं। वह बूढ़ा मछुआरा समंदर किनारे ही मर जाता है। नियति/प्रारब्ध का तांडव तबाह कर सकता है, बर्बाद कर सकता है, लेकिन मनुष्य को हरा नहीं सकता। कर्ण विजेता मनुष्य है, वह हारना नहीं जानता..... जूझकर जीने का स्वाद लेना बखूबी जानता है। इस काव्य में मुर्दों की भीड़ वाली जनसंख्या को जीवंत बना डालना ही ध्वनित है।

ग़ज़लें

अभिनव अरुण
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
9415678748

कई सदियों से मानवता को कितना प्यार देती हूँ
भागीरथ की तपस्या हूँ सभी को तार देती हूँ
न जाने बाँध कितने और कितने पुल बने मुझपर,
कहा किसने कि मैं खिलवाड़ का अधिकार देती हूँ
मैं अमृत हूँ तुम्हारे पुरखों की पूजा हूँ थाती हूँ
प्रदूषण सहती आयी हूँ मगर उद्धार देती हूँ
न समझो मात्र जल मैं ही तुम्हारी आज हूँ कल हूँ
मैं बचती हूँ तो बचने का तुम्हें उपहार देती हूँ।
करोड़ों आश्रित मुझपर मैं उनकी रोजी रोटी हूँ
करोड़ों जन को जीने का मैं ही आधार देती हूँ
हजारों साल से दोहन मेरा होता रहा फिर भी
मैं जीवन देती आई हूँ कहाँ संहार देती हूँ
यकीनन अस्मिता पर आज मेरे घोर संकट हैं
बचा लो मुझको मैं अग्रिम तुम्हें आभार देती हूँ
तुम्हारा आदि मैं ही हूँ तुम्हारा अंत हूँ मैं ही
तटों पर अपने मैं खुशियों का पारावार देती हूँ।
कभी फुर्सत मिले तो बांच लेना मेरी पीड़ा को
समय के सीने पर लिखा हुआ अखबार देती हूँ।

जतन हम लाख कर लें दुख के फेरे आ ही जाते हैं
सुनहरी धूप में बादल घनेरे आ ही जाते हैं।
सियासत के हरेक उत्सव में चम्बल सा ही होता है
बारात आने से कुछ पहले लुटेरे आ ही जाते हैं
उन्हें मालूम हमने पाल रखे आस्तीनों में
बजाते बीन अक्सरहा सपेरे आ ही जाते हैं
ये माल असबाब रिश्ते और नाते फानी है फिर भी
जुबां पर सबके तेरे और मेरे आ ही जाते हैं
अजब है दौर कि ज्योंही पतन का जिक्र आता है
हमारे जहन में संतों के डेरे आ ही जाते हैं
मछलियाँ तब समझती हैं कि उनको खतरा किनसे था
सुनहरे जाल लेकर जब मछेरे आ ही जाते हैं
यूँ कुव्वत आज़माने का हरेक को मिलता है मौका
मुक़ाबिल जुगनू के अक्सर अँधेरे आ ही जाते हैं
अज़ब रिश्ता है ये भी कि ज़रा सी खोंच लगते ही
हमारे दरमियाँ वो सात फेरे आ ही जाते हैं
ये कुदरत आसमाँ पर जैसे ही कोहबर सजाती है
सितारे बाहों में चंदा को घेरे आ ही जाते हैं
तेरे ख़त कॉल या मैसेज भले मुझको नहीं मिलते
आभासी दुनिया से अपडेट तेरे आ ही जाते हैं।

झलक

धर्मवीर भारती के जीवन और साहित्य के बीच संगम का पानी साफ नजर आता है

डॉ.डी.एन. प्रसाद
प्राध्यापक
एम.जी.ए.एच.यू, वर्धा (महाराष्ट्र)
मो . 9420063304

धर्मवीर भारती पर लिखना या धर्मवीर भारती पर लिखे हुए लिखना; यह दोनों ही एक बड़ी वैचारिकी की माँग करते हैं। छायावाद के सरकते ही प्रगतिवाद के क्रोड़ से झाँकते हुए प्रयोगवाद की जो नवीन दृष्टि भागवत का प्रेमी डॉ. धर्मवीर भारती ने संगम के तट से उस पार देखा, वही उनकी साहित्य–सर्जना के हेतु पावस दृष्टि बनी वाद–विवाद से मुक्त उच्छ्वास के आँगन से... कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, समालोचना, रिपोर्ताज और संपादकीय के साथ पत्रकारिता भी, सब वही उच्छ्वास...सुनो! मेरे मन हारो मत!/ दूर कहीं लोग अभी जीवित हैं/ यात्राएँ करते हैं, मंजिल है उनकी। साहित्य, समाज व जीवन की समन्वित परिणति! न कोई भय, न कोई त्रास; बस सिर्फ शब्दों की सहज प्यास जो अभिव्यक्ति की साफगोई बनकर निकली और साहित्याकाश में आच्छादित हुई निर्बाध तूफानों की लय में शब्दगीत का आह्वान बनके–सृजन की थकन भूल जा देवता!/ अभी तो पड़ी है धरा अधबनी/ अधूरी धरा पर नहीं है कहीं/ अभी स्वर्ग की नींव का भी पता/ सृजन की थकन भूल जा देवता!

ऐसे कलाकार से ध्वंस में भी निर्माण ही निरूपित होता है; क्योंकि उसका स्वभाव है सृजन। दो–दो विश्वयुद्धों का ध्वंस उसकी पश्यन्ति–दृष्टि में उसका पीछा कर रहे थे, इसलिए तो ठंढा लोहा की आग पर बैठकर सात वर्ष का गीत गया–हम सबके दामन में दाग/ हम सबकी आत्मा में झूठ/ हम सबके माथे पर शर्म/ हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ। इस सत्य को स्वीकारना और फिर ऐसे समय में भी, ऐसे युग में भी, ऐसे अंधेयुग में भी मूल्य मर्यादा के लिए चिंतित रहना–मर्यादा मत तोड़ो/ तोड़ी हुई मर्यादा/ कुचले हुए अजगर–सी/ गुंजलिका में कौरव–वंश को लपेटकर/ सूखी लकड़ी–सा तोड़ डालेगा। सृजनधर्मा को अपनी धर्मिता का बोध है। आज इसी बोध की अवहेलना सत् साहित्य के सृजन में बाधा है। धर्मवीर भारती जैसा नाम वैसा सृजन...अपनी भारतीय धर्मिता से कहीं भी विलग नहीं। युग साहित्य के वाद–विवाद के तात्कालिक लाभ से कहीं भी विचलित नहीं और भविष्य की उद्घोषणा कितनी मानवीय बोध की अवधारणात्मक संकल्पना से पूरित–जब कोई भी मनुष्य/ अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को/ उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है/ नियति नहीं है पूर्व निर्धारित/ उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है।

यह उद्घोष किसी साधारण कल्पना की उड़ान नहीं है, जीवन सत्य से रू–ब–रू हुए बिना ऐसी संकल्पना की उच्छ्वास आएगी ही नहीं, यथा जहाँ चाह, वहाँ राह! भारती ने वही किया, जो उसका उच्छ्वासित मन ने स्वीकारा। जीवन ने उसे अनुभव की भट्ठी में पकाया। चाहे प्रेम का प्रसंग हो, प्रकृति का संग हो या जीवन जीने की जीविका का रंग हो। कृष्ण ध्वनि से आलोड़ित–सुनो मेर मित्र/ यह जो मुझमें, इसे, उसे, तुम्हें अपने को/ कभी–कभी न समझ पाने की नादानी है न/ इसे भी रोको मत/ होने दो/ वह भी एक दिन हो–होकर/ रीत जायेगी। तभी तो उसने लोकतंत्र की मुनादी करा दी थी। फिर भी सपना है अभी भी...। क्योंकि सपना है अभी भी/ इसलिए तलवार टूटी, अश्व घायल/ कोहरे डूबी दिशाएँ/ कौन दुश्मन, कौन अपने लोग, सब कुछ धुन्ध धूमिल! किन्तु कायम युद्ध का संकल्प है अपना अभी भी/ क्योंकि सपना है अभी। आज इहलोक से उहलोक तक में सपनों की दुनिया का यथार्थ अंकन धर्मवीर भारती की श्रमजीवी संकल्पना का नैरन्तर्य है, जिससे गुनाहों का देवता भी गुनाहमुक्त हो चुका है और बकौल भारती सपने से सच को जानना चाहती है कि सुधा के बाद विनती के साथ चंदर कहाँ है?कैसे है?डॉ. शुक्ला सर कैसे हैं सुधा के बिना इलाहाबाद में?

धर्मवीर भारती ने मात्र दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' (1949) तथा सूरज का सातवाँ घोड़ा (1952) का सृजन किया है। लोकप्रियता के शिखर पर ये दोनों ही उपन्यास अपने प्रकाशन काल से आज तक और आज भी वैसे ही हैं, जैसा कल थे और नैरन्तर्य के नगीना बने हुए हैं। दोनों ही उपन्यास प्रेम का नया समाज शास्त्र गढ़ते हैं और परिणाम की सामाजिकी में वैचारिक समाजशास्त्र की रचना करते हैं। यही कारण है कि समाज का स्रोत इन दोनों ही उपन्यासों से सूखता नहीं है। पठनीयता का हेमरस बनता ही जाता है। कथा, कथानक, संवाद, भाषा, शैलीतत्व के लेपन से पात्र भी कथानक में सामाजिक होकर पाठक के स्वयं के हो जाते हैं। ऐसी स्थिति कथा को प्रतिभासित करती चलती है, विलोपन का समय ही नहीं आता, शाश्वतता की प्रवाह बनी रहती है। इन दोनों उपन्यासों की संरचना शाश्वती यथार्थ की संकल्पना में युग–युगांतर मानवीय संवेदना के समानान्तर हो गये हैं, अतः इसे हर समय काल में स्वीकारा जा रहा है और स्वीकारा जाएगा।

धर्मवीर भारती के चार कहानी संग्रहों मुर्दों का गाँव (1946), स्वर्ग और पृथ्वी (1949), चाँद और टूटे हुए लोग (1955) तथा बंद गली का आखिरी मकान (1969) एवं गोरी नगरीवाले साये (1964) और आश्रम (1970) सारिका में प्रकाशित कहानी को मिलाकर कुल 31 प्रकाशित कहानियों की कथा–संरचना, कथोपकथन, भाषाशैली, पात्र–विश्लेषण व संवाद–योजना की व्यावहारिक उद्देश्य की पड़ताल की जाय तो 'स्वर्ग और पृथ्वी' संग्रह प्रतीकात्मक बिम्ब से मनुष्यता की तलाश की कहानी है, जिसमें प्रकृति प्रेम की रोमानी तस्वीर भी सामने उपस्थित होती है। 'चाँद और टूटे हुए लोग' ने भी 'चाँद' की प्रतीकात्मक गतियों से मानवीय गतियों को साकार कराया है। कहानी के पात्र विनय और राजे का कथोपकथन उल्लेखनीय है–''पत्नी की हमदर्दी, उसका स्नेह, इसमें कुछ और ही रस रहता है। राजे तुम उसे कभी महसूस करोगे।'' यह संवाद अपने आप में परिपूर्ण है। बाकी की कहानियाँ सामाजिक विषमता, रूढ़ियाँ और परंपरागत पहचान से उखड़े और टूटे हुए लोगों की स्थितियों से उबरने की प्रेरक कल्पना का यथार्थ है। कहानी विधा में जब 'बंद गली का आखिरी मकान' सामने आती है, तब कहानी की नई भंगिमा भारती को नयी कहानी का प्रस्तोता बना देती है। इस संग्रह की 'गुल्की बन्नो' एक टाइप कैरेक्टर लेकर कहानी संसार में प्रवेश करती है और नई कहानियों की पांक्तेय कहानी बनकर जाती है। तत्वतः 'बंद गली का आखिरी मकान' कहानी विधा की उपलब्धि बनती है और भारतीजी को कहानीकार होने की प्रतिष्ठा दिलाती है। यह कहानी संग्रह आज के परिप्रेक्ष्य में भी वैसे ही पठनीय है तथा साहित्योपलब्धि की मानकता तय करती है।

गद्य की एकदम वैचारिक चिंतन की विधा है निबंध की संरचना। यह चित्त और चिंतन दोनों को खोलकर विचार को पल्लवित करने की विधा है। भारतीजी इसमें महारत हासिल किये हुए हैं। निबंध संरचना के संपूर्ण आयामों को अपनी लेखनी से विभोर किया है। ठेले पर हिमालय (1958), पश्न्ती (1969) तथा कहनी–अनकहनी (1970) भारतीजी के निबंधकार होने के ठोस प्रमाण हैं। इन्ही तीन निबंधों की पुस्तकों के कुल 94 निबंधों पर अपना विमर्श–वक्तव्य प्रस्तुत किया जाए, तो निबंध की जितनी भी विधा हो सकती है, भारतीजी ने इनमें रम कर प्रस्तुत किया है। उपन्यास और कहानी की तरह भारतीजी ने ये तीनों निबंध–संग्रह अपनी त्रयी संकल्पना में सार्थक हैं। लोकप्रियता और पठनीयता में वैसे ही जैसे उपन्यास और कहानी। निबंध विधा की साहित्य– संकल्पना और बुनावट में सटीक तथा विचार में चिंतन की चिंगारी भी और संवेदना का संकल्प भी, लेकिन सब कुछ मानव मूल्यों की कसौटी पर सार्थक भी। बाद के भारतीजी के कुछ निबंध–संग्रह जो संस्मरण विधा को समेटे हुए हैं, इस परिप्रेक्ष्य में भारतीजी के निबंधत्रयी निबंध साहित्य के लिए सम्पूरित हैं।

''भारतीजी की गद्य कृतियों को खासतौर पर पढ़ने लायक हैं, जिससे भारतीजी के जीवन और साहित्य के बीच संगम का पानी साफ नजर आता है और जिसमें गद्य की सीपियाँ साफ तैरती नजर आती हैं अपने में गद्यगरिमा की मुक्त धारणा किये हुए। जीवन–दर्शन, मौलिक मान्यताएँ, युग–चेतना के साथ भारतीजी की रचनाएँ अपने अस्तित्व की तलाश करती हैं और अपना मूल्य स्थापित करने में अपनी मौलिक प्रतिष्ठापना भी करती हैं–'तुम अंतर्मुखी रहे, घोर व्यक्तिवादी रहे, अहंकार ग्रस्त रहे... कोई भी जीवन–दर्शन सफल नहीं होता, अगर उसमें बाह्य यथार्थ और व्यापक सत्य धूप–छाँह की तरह न मिला हो।''[9]

जीवन–दर्शन के प्रति बेबाक टिप्पणी, जो जीवन–व्यवहार की चरम परिणति है, वही समाज–दर्शन का पारिवारिक सत्य निरूपित करता है। और भी, मानवीय शाश्वत रस के प्रति–''जो प्रेम समाज की प्रगति और व्यक्ति के विकास का सहायक नहीं बन सकता, वह निरर्थक है।''[10] भारती के दोनों ही उपन्यासों की सामाजिक मीमांसा सहोदर है, इसलिए दोनों ही उपन्यास जीवन रस को सिंचित करते रहे हैं, प्रेषणीयता के चरम और परम के पर भी। इसी क्रम में कहानियों की संवाद–सर्जना पात्रोन्मुखी और कालमुख भविष्य की शाश्वतता पर सम्पन्न होती है। उपन्यास के संपूर्ण आयाम में भारतीजी की कथा–संघटना और कहानी की कोर पर भारतीजी की व्यूहरचना सदा मानवीय रही है। प्रेम और रोमांस के सपने कहाँ फलते हैं, देखें–''अन्न जीवन की प्रथम आवश्यकता है, अन्न संस्कृति की प्रथम आवश्यकता है, जौ की सुनहली बालों की छाया में चिंतन, कल्पना, गीत, प्रेम और रोमांस के सपने झूलते हैं।''[11] यथार्थ की मनोरम व्यथा, जिसे किसी भी काल में अवहेलित नहीं किया जा सकता। ''आज भी उसे याद करती हूँ, तो... एक ताजगी महसूस होती है। उसकी लाई हुई खेत की मुलायम ककड़ियाँ तोड़ती थी, तो एक ताजी हरियाली महक–महक उठती थी।''[12] अलबत्ता, भारती की कथा संरचना की एक गंध–संवेदना अलग है, जिसे महसूसा जाता है। इसी तरह भारती के निबंधों में भी गंध–संवेदना का संस्कार पूरी तरह फलित हुआ है, जिसे अलग से पहचाना जा सकता है। 'ठेले पर हिमालय' पूरी–की–पूरी गंध–संवेदना की महक–सी है और तो और भारती 'अपनी ही मौत पर' लिखकर निबंर्ध हो जाते हैं और सबको चकित कर डालते हैं। यह भी निबंध रचना का एक पूर्वापर की संकल्पना है। ''कितना प्यारा लगता है अपने छोटे–से बसे घर के आँगन में रजनीगंधा के फूल वैसे उजले शुक्रतारे का रात भर महकना।''[13] अब तो जीवन और साहित्य दोनों से आँगन की अवधारणा ही खत्म हो गयी है, ऐसे में जीवन में फूलों की गंध या जीवन की गंध समाप्तप्राय हो गयी है। संवेदना तो दूर होकर अमानवीय स्वरूप धारण कर ली है, तभी तो ''राजनीतिज्ञ का अपने मतदाता से, साहित्यिक का अपने पाठक से, शिक्षक का अपने छात्र से आत्मीयता भरा रिश्ता टूट रहा है।''[14] यानी भारती का संपूर्ण लेखन मानव–मूल्यों की वेदना–संवेदना का साहित्य है युगबोध और युगचेतना के धरातल पर। जिसे वाद–विवाद से मुक्त मानवीय चेतन के धरातल पर पढ़ना आज और भी जरूरी है।

संदर्भ–

1. रात अँधियारी: हवा तेज, पृ. 56, सात गीत वर्ष, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004
2. थके हुए कलाकार से, पृ. 63, ठण्डा लोहा, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006
3. पराजित पीढ़ी का गीत, पृ. 34, पृ. 56, सात गीत वर्ष, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1989
4. कौरव नगरी, पृ. 8, अंधायुग, पृ. 56, डॉ. धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, 2005
5. कौरव नगरी, पृ. 15, डॉ. धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, 2005
6. आम्र बौर का अर्थ, मंजरी–परिणय, पृ. 26, कनुप्रिया, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
7. क्योंकि, पृ. 98 सपना है अभी भी, डॉ. धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
8. चाँद और टूटे हुए लोग, पृ. 65 चाँद और टूटे हुए लोग, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1985
9. गुनाहों का देवता, पृ. 309, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1949
10. सूरज का सातवाँ घोड़ा, पृ. 112, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1963
11. चाँद और टूटे हुए लोग, पृ. 160 चाँद और टूटे हुए लोग, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1985
12. बंद गली का आखिरी मकान, पृ. 43, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1969
13. पश्यंती, पृ. 65, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1969
14. कहनी–अनकहनी, पृ. 32, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2000

आज जरूरत है किताबों के अस्तित्व को बचाने हेतु हमें पढ़ने–पढ़ाने की संस्कृति विकसित करने तथा पुस्तक का उपहार देने की परम्परा बढ़ाने की।

–सुसंभाव्य

आलेख

विवेकानन्द

अध्यात्म के अनूठे ध्वजवाहक

राकेश भारतीय
द्वारका
नई दिल्ली–77
मो0 9968334756

किसी भी देश के लिए पराधीनता से बड़ा कोई अभिशाप नहीं होता। उसे पराधीन अवस्था में राजनीतिक, सैनिक से लेकर सांस्कृतिक रूप से कमतर सिद्ध करने का कोई मौका आक्रांता देश नहीं छोड़ता। एक सुनियोजित ढंग से पराधीन देश के आत्मविश्वास को तोड़ा जाता है, उसके द्वारा मान्य आस्थाओं–परंपराओं–सांस्कृतिक विभूतियों में खोट निकाला जाता है। अंग्रेजों ने भारत पर अपने आधिपत्य की नींव बंगाल में रखी थी। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में पराजय के बाद हिन्दुस्तानी राजनीतिक प्रतिरोध की धार भोथरी हो रखी थी। अपनी विजय के मद में डूबे हुए अंग्रेज न सिर्फ राजनीतिक रूप से अपनी स्थिति सुदृढ़ करते जा रहे थे, बल्कि भारत की सांस्कृतिक रूप से बेहद समृद्ध परंपरा में सौ छेद दिखाने की नित नई युक्तियाँ निकालते रहते थे। धर्म की धुरीवाली भारतीय संस्कृति को हीन साबित करने का तरीका था भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों, धार्मिक प्रतीकों, धार्मिक विभूतियों इत्यादि में खोट निकालकर तरह–तरह के मजाक उड़ाना। अंग्रेज सोची–समझी नीति के तहत पादरियों के झुंड को ऐसा करने के लिए भारत के विभिन्न इलाकों में भेज रहे थे। भौतिक सुविधाओं का लालच देकर भारतीय मध्यवर्ग को भी धर्म–परिवर्तन के लिए उकसाया जा रहा था। बंगाल का मध्यवर्ग विशेष रूप से निशाना बना हुआ था। आक्रांता के सुनियोजित सांस्कृतिक–धार्मिक हमले में भारतीय अस्मिता को बचाने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति से सम्पन्न किसी विलक्षण प्रतिभा की जरूरत थी।

रामकृष्ण परमहंस भक्तिमार्ग से आगे बढ़े हुए आध्यात्मिक महापुरुष थे। पर आक्रांता के सांस्कृतिक–धार्मिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतवासियों को सचेत करने के लिए एक दूसरी ही तरह की प्रतिभा की आवश्यकता थी। रामकृष्ण ने अपनी दिव्यदृष्टि से नरेन्द्र दत्त युवक में ऐसी संभावना देखी। नरेन्द्र हठी और उद्विग्न थे, बात तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थी तो बेदर्दी से मजाक उड़ाते थे। पिता की आकस्मिक मृत्यु के बाद नरेन्द्र का परिवार आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहा था और कलकत्ते की छोटी–सी नौकरी खोजने में भटकते हुए नरेन्द्र किसी समय रामकृष्ण से, अपने आराध्य से उनके लिए एक अदद नौकरी ही जुटाने का अनुरोध करने पहुँच गये थे। उनकी विवाहित बहन की अस्वाभाविक मृत्यु ने कठिनाइयों में एक और आयाम जोड़ दिया था। पर रामकृष्ण ने धैर्य से लगे रहे नरेन्द्र को उसके वास्तविक पथ तक पहुँचाने में। भक्तिमार्ग का असाधारण साधक एक ऐसे शिष्य को प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप से दीक्षित करता जा रहा था, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानंद के रूप में ज्ञानमार्ग का अद्‌भुत साधक बना और ज्ञान के आलोक में देश–विदेश के हजारों लोगों की 'भरम की टाटी' उड़ाने में कामयाब हुआ।

विवेकानंद को अपनी संस्कृति की कमियों के बारे में कोई मुगालता नहीं था और उनका एक प्रमुख मिशन था अपने देशवासियों का इस ओर से सावधान करना। धार्मिक संकीर्णता, छुआछूत, विचार और व्यवहार की विसंगति, निठल्ले बैठकर ऊँची–ऊँची बातें हाँकने इत्यादि से वे बेहद उद्विग्न हो उठते थे और कड़े–से–कड़े शब्दों में इन प्रवृत्तियों की आलोचना करते थे। दलित और पीड़ित वर्गों की दारुण परिस्थितियाँ उनको विचलित कर देती थीं और उनको अपमानित–प्रताड़ित करनेवाले उच्च वर्गों के दोगलेपन की वे कड़ाई से आलोचना करते थे। मद्रास में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा–''जैसा मैंने मलाबार प्रदेश में देखा, क्या वैसी वाहियात बातें संसार में पहले कभी थीं? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नहीं चल पाता। पर ज्योंही उसने कोई बेढब अंग्रेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी बातें सुधर जाती हैं...।''

ज्ञानमार्ग के इस विलक्षण यात्री को समाज के निचले से निचले पायदान पर स्थित व्यक्ति से ज्ञान पाने से कोई परहेज नहीं था। खेतड़ी के राजा ने उनके सम्मान में नृत्य का आयोजन किया तो वे इसे संन्यासी के अनुरूप न मानकर जाने लगे। नर्तकी ने यह देखकर गान छेड़ा–'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो...।' भावविभोर होकर विवेकानंद लौट पड़े और उससे क्षमा माँगी।

हिमालय की तलहटी में बहुपति प्रथा को माननेवाले एक परिवार की यह स्थिति जानने पर उस परिवार के आतिथ्य के विवेकानंद के तिरस्कार पर एक ही महिला से विवाहित कई भाई आश्चर्य से बोल पड़े–'आप तो हमें स्वार्थी होने का उपदेश दे रहे हैं!' और विवेकानंद के ज्ञानचक्षु सदाचार की सापेक्षता के इस अप्रत्याशित प्रमाण से खुल गये।

विवेकानंद भारत के युवकों से बहुत आशा रखते थे। बार–बार वे उन्हें हर तरह की संकीर्णता से ऊपर उठकर देख और समाज को मजबूत करने के लिए प्रेरित करते। 'उद्‌बोधन' पत्रिका के मार्च 1899 के अंक में प्रकाशित अपने लेख में उन्होंने आह्वान किया–''गर्व से बालो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है; बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चांडाल भारतवासी–सब मेरे भाई हैं...।''

इसी लेख में उन्होंने पश्चिम के अंधानुकरण की आलोचना करते हुए कहा–''हमलोगों में पाश्चात्य जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती जाती है कि भले–बुरे का निश्चय अब विचार–बुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें, वही अच्छा और वे जिसकी निंदा करें, वही बुरा! अफसोस, इससे बढ़कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा...।''

विवेकानंद की ख्याति का सूत्रपात शिकागो की विश्वधर्म सम्मेलन 1893 में दिये गये उनके अभूतपूर्व व्याख्यान से होता है, जिसमें उन्होंने शुरुआत ही परंपरा के विपरीत 'अमेरिका के भाइयो और बहनो....' जैसे संबोधन से की थी। पर उस महासभा तक पहुँचने का वृत्तांत ही इस संसार में उनकी अद्‌भुत नियति इंगित करने के लिए पर्याप्त था। वे अनाहूत थे, किसी भी धर्म के 'आधिकारिक' प्रतिनिधि नहीं थे, अपने ही देश के कुछ 'धार्मिक' प्रतिनिधियों ने उनकी राह में रोड़े डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी और उनकी स्पष्टवादिता अन्य धर्मों के प्रतिनिधियों के ईर्ष्या–विद्वेष में आग भड़का देती थीं। पर विवेकानंद ने अपने ज्ञान के तेज से सीमित समूहवादी दृष्टि को ही 'धर्म' समझनेवाले अन्य प्रतिनिधियों को बौना बनाकर रख दिया। वेदों–उपनिषदों के दिखाये हुए चरम सत्य के अनुसंधान के मार्ग पर आत्मविश्वास से चलते हुए उन्होंने अपने–अपने 'पंथों' के गुणगान में रत लोगों की ओर सारे पंथों की एक

ही परिणति की ओर शिवमहिम्नस्तोत्र की इन पंक्तियों के माध्यम से इंगित किया–

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

जिस प्रकार अनेक नदियाँ अलग–अलग स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभु! भिन्न–भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े–मेढ़े या सीधे रास्तों से जानेवाले लोग अंत में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

धर्म महासभा में ही पढ़े गये अपने एक निबंध में उन्होंने अन्य धर्मों के ऊपर उठी हुई हिन्दू धर्म की एक विशिष्टता की ओर ध्यान खींचा–''सारे संसार को मेरी यह चुनौती है कि वह समग्र संस्कृत दर्शनशास्त्र में मुझे एक ऐसी उक्ति तो दिखा दे, जिसमें यह बताया गया हो कि केवल हिन्दुओं का ही उद्धार होगा और दूसरों का नहीं। व्यास कहते हैं–हमारी जाति एक है और संप्रदाय की सीमा से बाहर भी पूर्णत्व तक पहुँचे हुए मनुष्य हैं।''

विवेकानंद ने हिन्दू धार्मिक परंपरा के मूल समन्वयवादी चरित्र की ओर बार–बार और प्रमाणसहित अपने विदेशी श्रोताओं का ध्यान खींचा। बौद्धधर्म पर बोलते हुए उन्होंने रेखांकित किया– ''ईसा मसीह यहूदी थे और शाक्यमुनि हिन्दू। यहूदियों ने ईसा को केवल अस्वीकार ही नहीं किया, उन्हें सूली पर भी चढ़ा दिया। हिन्दुओं ने शाक्यमुनि को ईश्वर के रूप में ग्रहण किया और वे उनकी पूजा करते हैं...।''

भारतभूमि पर एक से बढ़कर एक आध्यात्मिक विभूतियाँ पैदा हुई हैं, पर विवेकानंद की बहुआयामी क्षमता का रंग सबसे अलग था। वे संस्कृत से लेकर अंग्रेजी पर समान अधिकार रखते हुए पूर्व से लेकर पश्चिम तक की धार्मिक–आध्यात्मिक सोच का निचोड़ पाश्चात्य श्रोताओं को उनके ग्रहण करने लायक तथ्यों और तर्कों के बल पर बता सकते थे। चमत्कार और अंधविश्वास की जमीन पर आध्यात्मिकता की चौकड़ी जमानेवाले कई परवर्ती भारतीय संन्यासी पश्चिम के लोगों को 'दीक्षित' करने में लगे रहे हैं। विवेकानंद ने शुद्ध ज्ञान के आलोक में सत्य तक पहुँचने का मार्ग बताने की कोशिश की और सफल हुए। अपनी बात समझाने के लिए वे आधुनिक विज्ञान की अवधारणाओं तक से काम लेते। पाश्चात्य श्रोताओं को उनकी ही जमीन पर उनके धार्मिक विश्वासों की कमियाँ दिखाने का सात्विक साहस ऐसा था कि उन्होंने दो टूक कहा–''आप जितनी चाहें शेखी बघारें, पर तलवार के बिना आपकी ईसाइयत कहीं सफल हुई है?आपका धर्म ऐश्वर्य का लोभ दिखाकर प्रचारित किया जाता है...।''

दरअसल पाखंड चाहे हिन्दू धर्मावलंबी का हो या ईसाई का, उन्हें किसी भी कीमत पर स्वीकार्य नहीं था और इसकी पोल खोलने का वे कोई अवसर नहीं छोड़ते।

अपने गुरु की अपेक्षाओं पर खरा उतरते हुए ज्ञानमार्ग से सत्य का संधान जिस तरीके से विवेकानंद ने किया, वैसा उदाहरण कोई दूसरा नहीं है। पाश्चात्य मूल के उनके जो भी शिष्य बने, वे उनके ज्ञान और स्पष्टवादिता से प्रभावित होकर। जे. गुडविन, मार्गरेट नोबल और सेवियर दम्पति जैसे उनके शिष्य पाश्चात्य सुख–सुविधा को छोड़कर उनके वेदान्ती मार्ग पर चले। मार्गरेट नोबल से सिस्टर निवेदिता बनीं। उनकी शिष्या लंदन के स्कूल की प्रधानाध्यापिका का पद छोड़कर उनके साथ हो ली थीं। वे गुरु से निरंतर तर्क करतीं और अक्सर जबरदस्त बहस छिड़ जाती। गुरु के ज्ञान के आलोक में भारत में तपस्विनी का जीवन चुनना एक पाश्चात्य संस्कारों की स्त्री के लिए तब अकल्पनीय ही था। कविवर निराला ने अपनी कविताओं की पुस्तक 'अपरा' सिस्टर निवेदिता को समर्पित की थी।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के एक अद्भुत रूप से समर्थ व्याख्याकार और वाहक के रूप में विवेकानंद ने देश–विदेश में बहुत भ्रमण किया। कई बार अपने चिंताजनक स्वास्थ्य के बावजूद वे कर्तव्य के वशीभूत होकर दूर–दूर यात्रा पर निकल जाते। पर वे जानते थे कि लौकिक जगत में किये गये काम को स्थायित्व प्रदान करने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है। अपने गुरु भाइयों, शिष्यों, प्रशंसकों और पाश्चात्य अनुयायी–समूहों में फैली हुई सामाजिक–आध्यात्मिक चेतना को केन्द्रीभूत कर समाज की भलाई के लिए लगा देने के विचारस्वरूप रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई। इसके घोषित उद्देश्यों में जनसमुदाय का आध्यात्मिक कल्याण तो था ही, सांसारिक कल्याण भी था। विवेकानंद नेता के रूप में सर्वमान्य थे, पर कतिपय गुरुभाई अक्सर कार्यपद्धति को लेकर शंका उठाते थे। शंकाओं को तर्कों से काटते हुए विवेकानंद आवेश में भी आ जाते। उनका लक्ष्य उनके लिए स्पष्ट था, पर औरों को उसे समझाने में अक्सर उन्हें कष्ट भी होता। शुरू से ही रामकृष्ण मिशन का वंचित जनों की सहायता पर विशेष ध्यान रहा। जाति और वर्ण की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानवमात्र की दुर्दशा का परित्राण मिशन के लिए सर्वोपरि रहा। 1898 की गर्मियों में कलकत्ते में फैली प्लेग से पीड़ित लोगों की सहायता के लिए विवेकानंद अस्वस्थ होने के बावजूद दौड़े आए और एक समय धन जुटाकर पीड़ितों की मदद के निश्चय मठ–स्थापना हेतु खरीदी गई जमीन भी बेचने को तत्पर हो गये।

रामकृष्ण खान–पान में शुद्धता का विशेष ध्यान रखते थे, पर विवेकानंद कोई नियम नहीं मानते थे। एक बार एक अन्य शिष्य ने इसपर रामकृष्ण का ध्यान खींचा, तो वे बोले कि नरेन तो अग्निकुंड है, उसे कोई दोष नहीं लगेगा। विदेश–यात्रा से एक बार लौटने के बाद उन्हें हुक्का पीता हुआ पनवाड़ी दिख गया तो विवेकानन्द आराम से उसके पास जाकर दो–चार बार तम्बाकू की गुड़गुड़ी खींच डाले। ऐसे थे विवेकानंद! मानव निर्मित किसी भी सीमा को धता बताकर अपने हर कार्य से व्यापक मानवीयता को रेखांकित करने का सन्नद्ध।

इस जुलाई में विवेकानंद के महाप्रयाण को एक सौ सत्रह वर्ष हो जायेंगे। उनके द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन आज भी मानवमात्र की सेवा में यथाशक्ति लगा हुआ है। पर पश्चिम के अंधानुकरण से जिस खतरे से विवेकानंद ने एक शताब्दी पूर्व आगाह किया था, नया रूप धरकर भारतीय समाज की मूल आध्यात्मिक शक्ति को आच्छादित कर रहा है। कर्तव्य और त्याग के वशीभूत होकर वंचित जनों के उत्थान में शक्ति लगाने के बजाय व्यक्तिगत भोग–विलास को ही एकमात्र उद्देश्य माननेवाले लोग समाज में दिन दूने–रात चौगुने बढ़ रहे हैं।

क्या आज की परिस्थिति में स्वामी विवेकानंद के गृहदेश को ही उनके उपदेशों को आत्मसात करने की सबसे ज्यादा जरूरत दिखाई पड़ रही है?

मानव की प्रवृत्तियाँ छोटी कहानियों द्वारा अच्छी तरह से संयमित की जा सकती हैं। ये जाल नहीं बिछातीं, सीधे अन्तस्तल में चुभ जातीं।

–सुसंभाव्य

आलेख

हिन्दी सिनेमा का समाज पर प्रभाव

डॉ. संजित खांडेकर
सहायक प्राध्यापक
रा. जि. कला वा. एवं वि. महा.
भोसरी, पुणे–39

भारतीय फिल्में आरंभ से ही एक सीमा तक भारतीय समाज का आईना रही है, जो समाज की गतिविधियों को रेखांकित करती आई हैं। वास्तव में सिनेमा और साहित्य दो पृथक् विधाएँ हैं, लेकिन दोनों का पारस्परिक संबंध बहुत गहरा है। भारतीय सिनेमा का विकास धोंडिराज गोविंद फालके जो दादा साहब फालके के नाम से अधिक जाने जाते हैं, उन्हें भारत का स्वदेश निर्मित फीचर फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाने का श्रेय जाता है, जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक पर आधारित थी। इस फिल्म ने भारतीय चलचित्र उद्योग को जन्म दिया। 1920 की शुरुआत में हिन्दी सिनेमा धीरे–धीरे अपने नियमित आकार में पनपने लगा। इसी दौरान फिल्म उद्योग कानून के दायरे में भी आ गया। समय के साथ–साथ कई नई फिल्म कंपनियों और निर्माताओं का आगमन हुआ, जिसमें धीरेन गांगुली, बाबूराव पेंटर, सचेत सिंह, चंदुलाल शाह, आर्देशिर ईरानी और वी.शांताराम प्रमुख थे। भारत की प्रथम बोलती फिल्म 'आलम आरा' इस्पीरियल फिल्म कंपनी ने आर्देशिर ईरानी के निर्देशन में बनाई। इस फिल्म ने समूचे फिल्म जगत में क्रांति ला दी।

1913 में हिन्दी सिनेमा की शुरुआत हुई थी। शुरुआती दौर में धार्मिक फिल्में ही बनी; क्योंकि उस समय नैतिकता और धर्म–कर्म का ही बोलवाला था। फिर ऐतिहासिक फिल्में भी आने लगीं और खूब सराही गयी। आजादी के बाद देशभक्ति पर भी फिल्में बनने लगीं, जिसका श्रेय मनोज कुमार को दिया जाता है, जिन्हें भारत कुमार भी कहा जाता है। पिछले कुछ दशकों में तो बहुत–सी देशभक्ति पर आधारित फिल्में बनीं। उसके बाद सामाजिक विषयों पर फिल्म बनने लगी, उसमें बंदिनी, अछूत कन्या, जागृती जैसी फिल्में थीं। फिल्मों के अगले दौर में बहुत बड़ी मात्रा में रोमांटिक फिल्में बनीं। रोमांटिक फिल्मों में भी कुछ न कुछ सामाजिक संदेश जरूर होता था। इन फिल्मों ने देश की जनता की सोच में बदलाव लाने का प्रयास किया। जो बड़े–बड़े विचारक, समाज सुधारक नहीं कर सके, वह काम इन फिल्मों ने करके दिखाया है। जात–पात, छुआछूत, सामाजिक भेदभाव के खिलाफ इन फिल्मों में कुछ–न–कुछ संदेश दिया है।

'कटी पतंग' एक रोमांटिक फिल्म थी, सुपर स्टार राजेश खन्ना एक रोमांटिक हीरो के रूप में मशहूर थे। ऐसी ही एक फिल्म में राजेश खन्ना एक दलित युवती से प्यार करते हैं। इन फिल्मों ने समाज की रुढ़ियों को तोड़ने में बड़ी भूमिका अदा की है। नवयुवकों की सोच में बदलाव लाया है। 1950 में रंगीन फिल्मों का दौर शुरू हुआ। ये फिल्में ज्यादातर प्रेम संबंधों पर आधारित होती थी। इसी दौर में लैला मजनू, हीर राँझा, सोनी महिवाल, शीरी फरहान जैसी फिल्मों ने भारतीय सिनेमा में प्रेम संबंधों को लेकर अपनी लोकप्रियता कायम रखा। हुस्न हाजिर है मोहब्बत की सजा पाने, जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा, प्यार किया तो डरना क्या–इन गानों से प्रेम की प्रीति ईमानदारी का आभास होता है। अगर हम प्रेम की भाषा में समझें, तो ये कहना गलत नहीं होगा कि प्यार की जिंदगी है। इसलिए एक शायर ने कहा है–''ये इश्क नहीं आसां बस इतना समझ लीजिए, एक आग का दरिया है और डूबते जाना है।'' अगर हम आज का प्यार देखें, तो आज की फिल्मों में जो प्यार दिखाया जाता है, उसे 'लव सेक्स और धोका' कहा जाता है। वास्तव में कल से आज में बहुत अंतर हो गया है, जो भारतीय फिल्मों में देखते हैं।

1960 से 1970 तक के दशक में फिल्मों में राजनीति, हिंसा, बलात्कार, पीड़ा से परेशान जनता को दर्शाया गया है। इस काल में भारतीय सिनेमा में काफी परिवर्तन हुआ। आज फिल्मों में माँ जीन्स टॉप पहने क्लब, पार्टी, शोपिंग करती हुई दर्शायी जाती है, उस माँ के मुकाबले जहाँ माँ दिन–रात मेहनत मजदूरी करके अपने बच्चों को पढ़ाती है, खुद भूखे रहकर अपने बच्चे का पेट पालती है। वास्तव में बहुत फर्क है हिन्दी सिनेमा की आज की माँ में और 19वीं सदी की माँ में और यही फर्क हमें समाज में बदलते हुए रूप को दर्शा रहा है। इस काल में कितनी भी फिल्में आईं, उनमें अत्याचार, दुश्मनी, लड़ाई–झगड़े, बेबसी केन्द्र में थी। 1980 से 1991 के दशक में फिर से एक बार प्यार को दर्शाया गया है। फैशन से लेकर रिश्ते, रिश्तों से लेकर हमारी सोच कहीं न कहीं फिल्मों और हिरो–हिरोइन पर टिकी रही। 19वीं सदी की हिरोइन जब परदे पर आती थी, तो हम उसकी अदा, सादगी, शर्म, मासुमियत को दिल में बसाए हुए रहते थे कि उसकी जैसी अदा हमारे अंदर भी आ जाए। और आज की हिरोइन बोल्ड, स्मार्ट, छुरी की धार की तरह तेज, चंचल होती है। हम इनकी तरह बनने की कोशिश करते हैं तो कहा जाता है कि हम फैशन से लेकर पर्सनालिटी, पर्सनालिटी से लेकर रिश्तों तक हम फिल्मों को कहीं–न–कहीं अपनी जिंदगी में उतार लेते हैं।

प्रत्येक सिनेमा में दो भाग होते हैं। एक भाग सच होता है, तो दूसरा भाग गलत होता है। हम सिनेमा में दर्शाए हुए सीनों को देखते हैं, पर ऐसा क्यों दर्शाया जा रहा है, ये नहीं सोचते। मान लो, हिरो ने विलन को लोहे की राड़ से मारा, हमने मारने का तरीका तो देख लिया, पर ये भूल गये कि जीत तो सच की हुई। लोग कहते हैं कि सिनेमा के कारण क्राइम बढ़ता है, परन्तु सिनेमा के कारण नहीं, लोगों की मेंटेलिटी के कारण क्राइम बढ़ता है। भाषा, ड्रेस, सभ्यता ये चीज हिन्दी सिनेमा में गलत लगती है; क्योंकि जहाँ हम भारत की संस्कृति की बात करते हैं, तो वही हम विदेशी संस्कृति का अनुकरण करते नजर आते हैं। इस तरफ निर्माताओं को थोड़ा ध्यान देना होगा नहीं तो हम जिस समाज का सपना देख रहे हैं, वो सपना ही रह जाएगा। वर्तमान सिनेमा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को भूल गया है। अब सिनेमा में समाज को दिशा–निर्देश के लिए आदर्श चरित्र प्रस्तुत नहीं किये जाते। भारतीय सिनेमा अब स्वस्थ मनोरंजन का साधन नहीं रह गया है। उसपर पश्चिमी संस्कृति हावी हो रही है, जिसमें अश्लीलता, नग्नता का प्रदर्शन किया जा रहा है। इसका समाज पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है। पहले की तुलना में आज के भारतीय समाज का स्वरूप ही बदल गया है। खासकर युवा पीढ़ी की जीवनचर्या और उनके विचारों में परिवर्तन देखने को मिल रहा है। वास्तव में सिनेमा ने अब बड़े उद्योग का रूप ले लिया है। अब सिनेमा स्वस्थ मनोरंजन अथवा समाज का पथ–प्रदर्शन करने की बजाए व्यापार के रूप में केवल अपनी उन्नति कर रहा है।

वर्तमान फिल्मों में एक प्रेमी को निर्दयता से अपनी प्रेमिका की हत्या करते हुए दिखाया जाता है। नौजवानों को नशीले पदार्थों का सेवन करते हुए तथा अपराध एवं व्यभिचार में लिप्त दिखाया जाता है। आज के सिनेमा अपनी उन्नति के लिए समाज की चिंता से मुक्त होकर दर्शकों को हिंसा, नग्नता, अश्लीलता बेच रहे हैं। आज ऐसे सिनेमा के बहिस्कार की आवश्यकता है।

सिनेमा के क्षेत्र में विद्वानों का कहना है कि फिल्म समाज का आईना होती है। अर्थात् हमारा समाज जैसा है, वैसी ही फिल्म होती है। तो दूसरी तरफ कहा जाता है कि फिल्मों से समाज बनता है और बिगड़ता है यानी फिल्म और

टीवी में जैसा होता है, समाज भी उसी कदमों पर चलता है। इन दोनों ही बातों में बहुत फर्क है। फिल्म समाज का आईना होती है, ऐसा भारतीय सिनेमा के शुरुआती दौर में कह सकते हैं। इनमें 'मदर इंडिया', 'पथे पांचाली' आदि फिल्में हैं। तामस, नीम का पेड़, तीसरी कसम–ये कुछ फिल्म नाटक है, जो हिन्दी साहित्य द्वारा लिखे गये हैं। अर्थात् रचना का फिल्मांकन किया गया। 1960 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' पर इसी नाम से फिल्म बनी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास पर 'धर्मपुत्र' नाम से बी.आर चौपड़ा ने फिल्म बनाई, रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर तीसरी कसम' बनी। प्रेमचंद की मृत्यु से काफी समय बाद उसकी तीन कहानियों पर फिल्में बनी, लेकिन चर्चित हो सकी सत्यजीत राय द्वारा बनाई गई पहली हिन्दी फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी'। 1934 में प्रेमचंद जी की ही कृतियों पर 'नवजीवन' और 'सेवासदन' फिल्में बनी। प्रेमचंदजी की कहानी 'त्रियाचरित्र' को आधार बनाकर 'स्वामी' नाम की फिल्म बनाई। 1946 'रंगभूमि' उपन्यास पर 'रंगभूमि' नाम से फिल्म बनी। 1941 में भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर केदार शर्मा ने इसी नाम से फिल्म बनाई।

शरतचन्द्र के उपन्यास 'देवदास' के नाम से फिल्म बनी। बंकिमचंद्र चटर्जी की कृतियों पर 'आनंदमठ' और 'दुर्गेश नंदिनी' जैसी फिल्में बनीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कृति नौकाडूबी पर 'मिलन' नाम की फिल्म बनी। विमल मित्र के उपन्यास 'साहब बीबी और गुलाम' पर इसी नाम से फिल्म बनी। कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सड़क सन्तावन गलियाँ' और 'डाक बंगला' पर क्रमशः बदनाम बस्ती और डाक बंगला (1974) नाम की फिल्म बनी। गुलजार ने कमलेश्वर जी की कृतियों पर 'आँधी' और 'मौसम' नाम से फिल्म बनाई, जो सफल साबित हुई। बासु चटर्जी बंगला भाषी थे, लेकिन उन्होंने हिन्दी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश' पर उन्होंने फिल्म बनाई। मन्नु भंडारी की कहानी 'यही सच है' पर उन्होंने 'रजनीगंधा' नाम से फिल्म बनाई। हिन्दी साहित्य की कृतियों पर उस दौर में कुछ और फिल्में बनीं, लेकिन हिन्दी फिल्मी दुनिया में अमिताभ बच्चन, बासु चटर्जी, हृषिकेश मुखर्जी, गोविंद निहलानी, श्याम बेनेगल, अरुण कौर, गुलजार जैसे फिल्मकारों के होते हुए भी हिन्दी फिल्में भारी हिंसा और घटिया हास्य से लहूलुहान होने लगी।

उन दिनों जो फिल्में बनीं, वो सभी काल्पनिक कहानियों पर ज्यादा थी। कहानियों को तोड़–मरोड़कर पेश किया जाने लगा, ताकि लोगों का मनोरंजन हो सके या मनोरंजन करना ही फिल्म का एक हिस्सा होता था। परन्तु सिनेमा की यह यात्रा आधुनिक युग में पहुँचकर पूरी तरह से वह एक उद्योग बन गया है। आज फिल्मों के नकारात्मक प्रभाव ज्यादा हैं, आज फिल्म मार्केट के हिसाब से बनती है। फिल्मों का उद्देश्य पैसा कमाना बन गया है। आज ज्यादातर फिल्म समाज के आईने को तोड़ती है, जिससे एक नया और खोखले समाज का निर्माण हो रहा है।

साठ के दशक में अधिकांशतः सामान्य दर्जे की फिल्में बनीं, जो भारतीय समाज के चित्र प्रस्तुत करती थी और समाज से प्रभावित भी होती थी। राजकपूर की जिस देश में गंगा बहती है, संगम, दिलीप कुमार की गंगा जमुना, एस मुखर्जी की जंगली, सुनील दत्त की मुझे जीने दो, बासु भट्टाचार्य की तीसरी कसम, रामानंद सागर की आरजू, प्रमोद चक्रवर्ती की लव इन टोकियो, शक्ति सामंत की आराधना, हृषिकेश मुखर्जी की आशीर्वाद और आनंद, बी.आर. चौपड़ा की वक्त, मनोज कुमार की उपकार आदि इस समय के साथ ही भारतीय समाज से फिल्मों में और फिल्मों से भारतीय समाज की ओर आधुनिकता और फैशन की लहर चल पड़ी। महिलाओं में जागरुकता आई। सत्तर के दशक में मल्टीस्टार फिल्में आई। राजकपूर की बॉबी, रमेश सिप्पी की शोले, अमिताभ बच्चन की जंजीर, दीवार, खूनपसीना, कभी–कभी, अमर अकबर एन्थॉनी, मुकद्दर का सिकंदर, यादों की बारात, हम किसी से कम नहीं, धर्मवीर, मेरा गाँव–मेरा देश आदि। श्याम बेनेगल की अंकुर इस दशक की उल्लेखनीय फिल्म थी।

अस्सी के दशक में श्याम बेनेगल का मंथन, भूमिका, निशांत, जुनून और त्रिकाल जैसी ज्वलंत विषयों का समेटती हुई अच्छी फिल्में दर्शकों को दी। प्रकाश झा की दामुल सहित, अपर्णा सेन की 36 चौरंगी लेन, रमेश शर्मा की नई दिल्ली टाइम्स, केतन मेहता की मिर्च मसाला, गुलजार की इजाजत, गिरीश कर्नाड की उत्सव, तपन सिन्हा की आज का रॉबिनहुड आदि। अस्सी की समाप्ति और नब्बे की शुरुआत में तेजाब, कयामत से कयामत तक, मैंने प्यार किया, चाँदनी लम्हे, घायल, जो जीता वही सिकंदर, क्रांतिवीर, हम आपके हैं कौन, दिलवाले दुल्हनियाँ ले जायेंगे आदि। इस प्रकार रोमांटिक प्रेम कहानियों से मिश्रित लोकप्रिय फिल्में बनीं। नई शताब्दी में कहो ना प्यार है, रिफ्यूजी आदि उल्लेखनीय फिल्में हैं। आगे टेलिविजन की बढ़ती लोकप्रियता और विडिओ पायरेसी के चलते फिल्मों को पिक्चर हॉल में देखने की लोकप्रियता घट गयी। यह भारतीय सिनेमा के विकास की कहानी है।

इन फिल्मों ने समय–समय पर हमारे समाज को कैसे प्रभावित किया। दरअसल यह कहना कठिन होगा कि समाज और समय फिल्मों में प्रतिबिम्बित होता है या फिल्मों में समाज प्रभावित होता है। दोनों ही बातें अपनी–अपनी सीमाओं में सही हैं। कहानी कितनी भी काल्पनिक क्यों न हो, वह समाज से जुड़ी होती है। यही फिल्मों में भी अभिव्यक्त होता है। फिल्मों का असर हमारे युवाओं, बच्चों पर सकारात्मक और नकारात्मक भी होता है। परंतु ऐसा ही असर साहित्य से भी होता है। क्रांतिवीर साहित्य ने स्वतंत्रता संग्राम म अनेक युवाओं को प्रेरित किया था। मार्क्स के साहित्य ने भी कई कॉमरेड नक्सलाइट खड़े कर दिये। अतः हर माध्यम से समाज पर अपने प्रभाव होते हैं। एक दूजे के लिए फिल्म को देखकर कई प्रेमी युगलों ने आत्महत्या कर ली थी। मोहब्बतें फिल्म ने यह साबित कर दिया कि कॉलेज–स्कूलों में माइक्रो मिनी स्कर्ट पहनकर बस रोमांस की हद पार करना। ऐसी एक फिल्म आशिक में भी भारतीय नैतिकता का प्रश्न खड़ा होता है। भारतीय सिनेमा के आरंभिक दशकों में जो फिल्में बनती थीं, उनमें भारतीय संस्कृति की महक होती थी तथा विभिन्न आयामों से भारतीयता को उभारा जाता था। बहुत समय बाद कुछ ऐसी भी फिल्में देखने में आयी, जिसमें हमारी संस्कृति की झलक मिलती है। हम दिल दे चुके सनम और हम साथ–साथ हैं। वैसे देखा जाए तो भारतीय समाज और सिनेमा दोनों ने काफी तकनीकी तरक्की कर ली है। अब जैसे–जैसे फिल्म व्यवसाय बढ़ रहा है, वैसे–वैसे फिल्में के प्रति दर्शकों की संवेदनशीलता घट रही है। आज हमारे युवा के पास विश्वभर की फिल्में देखने और जानकारी के अनेक माध्यम हैं।

आज हिन्दी फिल्मों का परिदृश्य बहुत बदल चुका है, हर तरह की फिल्में बन रही हैं। विषयों में विविधता आ गई है। भारत में फिल्मों ने 100 वर्षों की यात्रा पूरी कर ली है। आज भारत साल में सर्वाधिक फिल्में बनाने में अग्रणी है, आधुनिक उपकरणों, उदात्त प्रस्तुति के साथ यह नये युग में पहुँच चुका है; लेकिन गुणवत्ता के मामलों में भारतीय सिनेमा को और भी दूरी तय करनी होगी। 1913 से शुरू हुई यह हिन्दी फिल्मों की यात्रा आज तक सर्वाधिक फिल्में हिन्दी भाषा में ही बनाई गई है। इस तरह हिन्दी भारत की ही नहीं भारत के मुख्य सिनेमा की भाषा है। विश्व में हिन्दी सिनेमा ही भारतीय सिनेमा का प्रतिनिधित्व करता है।

संदर्भ–

1. भारतीय हिन्दी सिनेमा का इतिहास–नारायण प्रसाद त्रिपाठी
2. भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन–श्रीदेवेन्द्रनाथ सिंह, डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
3. सिनेमा और साहित्य का अंतः संबंध–डॉ. चन्द्रकान्त मिसाल
4. भूमंडलीकरण और हिन्दी सिनेमा–हिमांशु

आलेख

नेपाल में हिन्दी का इतिहास
स्थिति और उसका भविष्य

आलोक भारती
जयनगर, मधुबनी
मो.–8292350609

हिन्दी वैश्विक स्तर पर सर्वाधिक बोली जानेवाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। इसके साथ ही हिन्दी का नेपाल में लगभग साढ़े ग्यारह वर्ष का स्वर्णिम इतिहास रहा है। भारत की तरह नेपाल भी बहुभाषी देश रहा है। ऐसे देश में ऐसी भाषा या बोली की हमेशा जरूरत रही है, जो राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने की भूमिका का निर्वहन कर सके। वैसी भाषा नेपाली के बाद हिन्दी ही है।

नेपाल की भाषा नीति का एक परिदृश्य नजरों के सामने उभर रहा है। 70 साल पूर्व नेपाल में हिन्दी व अन्य भाषाओं की नीति 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' जैसी थी। भाषा संबंधी कोई विवाद न था। इससे भी पूर्व प्राचीन काल पर दृष्टिपात करें, तो यहाँ शिक्षा और संस्कृति की भाषा के रूप में हिन्दी व संस्कृत स्वीकार्य थी। मध्ययुग में नेवारी, मैथिली, भोजपुरी, हिन्दी आदि का प्रयोग हुआ करता था। इसी प्रकार नेपाल के पूर्व शासक पृथ्वी नारायण शाह द्वारा नेपाल के एकीकरण के बाद सारे प्रशासनिक कार्य हिन्दी में होते थे। शाहवंशी राजाओं के समय हिन्दी और नेपाली, प्रचलन में साथ–साथ थी। मध्यकाल में अनेक कवि और लेखक ऐसे थे, जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दी के विकास में अहम् योगदान किया। इसी तरह आधुनिक काल में भी अनेक साहित्यकारों यथा लेखनाथ पौडेल, मोती रामभट्ट, लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा वी.पी. कोईराला, भवानी भिक्षु, केदार मान व्यथित, धुस्वाँ नेपाली सरीखे प्रतिभासम्पन्न साहित्यकारों ने हिन्दी के विकास में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। उल्लेखनीय है कि नेपाल में वि.सं. 2018 तक हिन्दी बाल कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालय तक शिक्षा का माध्यम थी।

लेकिन एक भाषा और एक भेष की नीति को क्रियान्वित करने के क्रम में धीरे–धीरे सब विलय हो गया। स्कूलों से हिन्दी हटा दी गई। विदित हो कि नेपाल में 16 दिसम्बर 1960 को संसदीय प्रजातंत्र खत्म कर दिये जाने के बाद हिन्दी के प्रति सरकारी स्तर पर घृणा के बीज बाए गए। फिर क्रमशः सभी हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं को बंद कर दिया गया। साथ ही संपूर्ण तराई क्षेत्र में हिन्दी माध्यम की पढ़ाई बंद कर राष्ट्रभाषा नेपाली को एकमात्र शिक्षा का माध्यम बनाकर भाषाई साम्राज्य फैलाया गया। सन् 1990 के जन आंदोलन द्वारा 8 अप्रैल को प्रजातंत्र की घोषणा के पूर्व तक हिन्दी को दुश्मन भाषा माना गया। हिन्दी से संबंधित सभी तरह के प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

गौरतलब है कि अतीत में शाही परिवार से जुड़े शासक एवं शीर्ष पदों पर रहे कई नेता भारत में ही शिक्षित हुए हैं। इनके मन में भी हिन्दी के प्रति उतना ही दर्द है, जितना तराईवासियों के दिल में...। विडम्बना यह है कि निरंकुश राजतंत्र से गणतंत्रवादी देश के रूप में स्थापित होने तक सत्ता की कमान पर्वतीय वर्ग के हाथों में रही। यह भी एक सत्य है कि तराई वासियों की संख्या पर्वतीय वर्ग की अपेक्षा कहीं ज्यादा है।....और इनमें मैथिली एवं हिन्दी भाषी लोगों की संख्या सर्वाधिक है।

विदित हो कि निरंकुश एवं पंचायती व्यवस्था से उपजे माहौल में जाति एवं भाषा विशेषकर पर्वतीय लोगों के हितों को ध्यान में रखकर तराई के लोगों पर थोप दी गई। बल्कि उसे शिक्षा और भाषा नीति से पूरी तरह बहिस्कृत कर दिया गया। इसका एक ज्वलंत उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है–

उपराष्ट्रपति परमानंद झा द्वारा हिन्दी में लिया गया शपथग्रहण सत्ताधारी वर्ग द्वारा पचा न पाना यह दर्शाता है कि राजनैतिक लोग राष्ट्र विखंडनकारी देशद्रोही तक की संज्ञा दे डालते हैं। और फिर कई राजनीतिक दलों के विद्यार्थी राजधानी की सड़कों पर टाय जलाकर आग लगाकर विरोध प्रदर्शन करने लगते हैं।

जिस प्रकार पंचायती तानाशाही सरकार हिन्दी को विदेशी भाषा का दर्जा देती रही, उसी तरह गणतंत्रवादी नेपाल की आंदोलनकारी जनता एवं राजनेता भी हिन्दी भाषा को विदेशी भाषा कह रहे हैं। इसके साथ ही खगेन्द्र संग्रौला जैसे समालोचक भी उपराष्ट्रपति परमानंद झा जैसे तराईवासी को भारतीय कहने से भी नहीं हिचके। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने आलेख–चियामा परेको झिको–में यहाँ तक लिख डाला–'हिन्दी बोल्ने त्यो पात्र नेपाली संवेदना नेपाली स्वाभिमान र नेपाली पहिचान भित्र को किमार्थ होइन... । त्यो अन्त कसै को हो...कठपुतली भए र हाम्रो घाउ मा नून चूक लगाउन आए को हो...।'

ऐसा कहकर खगेन्द्र संग्रौला ने तराईवासियों में फूट डालने का काम किया। इसी प्रकार मिथिलाचंल वासी भी उपराष्ट्रपति का विरोध करते हुए सुर में सुर मिलाकर कहने लगे–'उनको मैथिली में शपथ ग्रहण करना चाहिए न कि हिन्दी में।'

उल्लेखनीय है कि भाषा संबंधी विवाद वि.सं. 2020 की जनगणना से ही शुरू हो गया। जबकि दूसरी जनगणना में भाषा के कॉलम से हिन्दी का नाम ही हटा दिया गया और तराई क्षेत्र में मैथिली, भोजपुरी एवं अवधी के साथ राजवंशी, तनुआर और थारू भाषा को पृथक् अस्तित्व देकर अलग भाषा और अलग क्षेत्र बना दिया गया। इसके बाद उक्त सभी भाषी लोग अपनी अस्मिता के लिए लड़ने लगे। अंग्रेजों की तरह यहाँ भी–'फूट डालो और राज करो।' की नीति किसी हद तक सफल रही।

अगर यही स्थिति रही तो वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दी भाषा भाषायी विरोध क्षुद्र स्वार्थपूर्ति का साधनमात्र लोग समझने लगेंगे बौर फिर तराईवासी का गुस्सा किसी ज्वालामुखी की तरह फूट पड़े। जिसका परिणाम भी भयंकर होगा। हो सकता है अखंड नेपाल संभावित कुछ हिस्सों में बिखर जाय।

विदित हो कि भारतीय दूतावास से मिलनेवाली सहायता राशि का 80 प्रतिशत भागीदारी पर्वतीय वर्ग ही बनता है। इसका लाभ तराईवासी को आंशिक रूप में ही मिल पाता है। नेपाल के सत्तारूढ़ लोग हिन्दी भाषी पड़ोसी देश की सहायता राशि, हिन्दी पत्र–पत्रिका, सिनेमा, टी.वी. सीरियल आदि का उपयोग करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। फिर हिन्दी भाषा व उसे बोलनेवाले आम लोग विदेशी कैसे हो जाते हैं?यह सवाल उठना स्वाभाविक है।

इस प्रकार के राष्ट्रीयता की परिभाषा दिये जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी के प्रति नकारात्मक वातावरण तैयार होने लगा। लोग औपचारिक रूप से हिन्दी बोलने से भी परहेज करने लगे।

हिन्दी विरोधियों के भाषायी, मनोविज्ञान को स्पष्ट करते हुए डॉ. सूर्यनाथ गोप ने अपने एक शोधपत्र में कहा था–'नेपाल में हिन्दी बोलनेवालों की विस्तृत तराई भूमि और उसकी विशाल जनसंख्या ही नेपाली समर्थकों और प्रशासकों के मन में भय पैदा करती हैं। नेपाली की भाषिक स्थिति में नेपाली के मार्ग में दो भाषाएँ बड़ी चुनौती उत्पन्न करती रही हैं, दक्षिणी प्रदेश तराई जैसे व्यापक क्षेत्र की भाषा हिन्दी और प्रदेश के ठीक मध्य स्थित राजधानी की भाषा

नेवारी। नेपाली भाषा के समर्थक व प्रशासन नेपाली को ही एकमात्र राष्ट्रीय मर्यादा का आधार माननेवाले लोग इन दोनों भाषाओं से सशंकित रहते हैं।

नेपाल में हिन्दी विवाद का दूसरा नाम है। हिन्दी भाषा को लेकर इस देश में द्वंद्वकी स्थिति है। वैसे मातृभाषा के नाम पर पूरा हिन्दी भाषी क्षेत्र विभाजित है।

नेपाली शासकों के दिलोंदिमाग में हिन्दी को विदेशी भाषा मानने का रोग भले ही घर कर गया हो, लेकिन सन् 2007 के मधेशी आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में देशभर के रुख ने हिन्दी से परहेज को हल्का करने का काम किया है। फलस्वरूप मधेश के अधिकांश संविधान सभा सदस्यों ने सदन में हुई बहस में हिन्दी में ही अपने विचारों को व्यक्त किया। इसपर उन्हें संविधान सभा के प्रमुख के हिन्दी नहीं बोलने की बात का सामना नहीं करना पड़ता।

यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि नेपाल में विगत साढ़े पाँच दशक की तुलना में हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं की संख्या नेपाली पत्र पत्रिकाओं की 2956 के स्थान पर मात्र 13 रह गई। वैसे सरकारी अथवा गैर सरकारी स्तर पर सहयोग के बगैर प्रायः पत्रिकाओं की स्थिति बहुत दयनीय है। फिर भी वर्तमान समय में हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं के विकास की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं। इसके साथ ही इलेक्ट्रिक संसाधनों की बढ़ती लोकप्रियता क कारण प्रिंट मीडिया, सिनेमा एवं पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशक पर खासा प्रभाव पड़ा है। कोई इसी कारण काल कवलित भी हो गई।

गौरतलब है कि स्थितियाँ जैसी भी हों, सभी भाषाओं के बीच हिन्दी का संपर्क भाषा के रूप में वर्चस्व कायम रहेगा। साथ ही यह रोजगारोन्मुख रहेगी।

आधुनिक समय में भले ही हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं की संख्या नगण्य हो, कवियों, साहित्यकारों के दिल में हिन्दी के प्रति अनुराग भी कम नहीं है। प्रस्तुत है वर्तमान समय के हिन्दी रचनाकारों की लंबी फेहरिस्त के कुछ लब्धप्रतिष्ठ चुनिंदा लोगों के नाम; यथा–कवि रुद्रनारायण भारती, डॉ. रेवतरमण लाल, ताराकांत झा, सुमन कुमार नेपाली, जयशंकर नाथ झा, राम दयाल राकेश, डॉ. कौशलेन्द्र बहादुर श्रीवास्तव, डॉ. सूर्यनाथ गोप, डॉ. आशा सिन्हा, काशी प्रसाद श्रीवास्तव, युगल किशोर निधि एवं राजेश्वर नेपाली। ये कुछ ऐसे नाम हैं, जिन्होंने विषम परिस्थितियों में भी हिन्दी की ज्योति को कभी मंद नहीं होने दिया।

इनमें राजेश्वर नेपाली का व्यक्तित्व स्वयं में अनूठा है। इनका बहुआयामी रचनाकार होने के साथ ही नेपाली, हिन्दी व मैथिली भाषा पर समान अधिकार है। इनकी कई कृतियाँ विविध विधाओं एवं उक्त भाषाओं में प्रकाशित होकर पर्याप्त चर्चित हो चुकी हैं। पत्रकारिता, लेखन, संपादन एवं हिन्दी के प्रति समर्पण भाव किसी क्रांति दूत से कम नहीं। राजनीति के संदर्भ मेंसन् 1952 से अबतक नेपाली राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के बैनर तले विभिन्न शहरों में कार्यक्रम आयोजित कर एक कीर्तिमान की स्थापना की है, जिसके जरिये देश–विदेश के अनेक साहित्यकार, कला और संस्कृति प्रेमी सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। साथ ही इनके संपादन में कई पत्र–पत्रिका समय–समय पर प्रकाशित होकर चर्चित हुई। फिलहाल इनकी देख–रेख में हिन्दी साप्ताहिक 'लोकमत' का विगत तीन दशकों से भी अधिक समय से निरंतर प्रकाशन हो रहा है। ऐसे कर्मयोगी साहित्यकार को कोटिशः धन्यवाद!

राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के विविध आयोजनों में हिन्दी को संवैधानिक मान्यता दिलाने की माँग निरंतर उठती रही है, यह भी आवश्यक है। इससे जुड़े समस्त बुद्धिजीवी वर्ग शीघ्र ही अपने प्रयास में सफल होंगे।

और अंत में आदि कवि कुक्करीपा, रत्ननाथ एवं जनक राज किशोरी शरण अलि आदि के देश में भाषा पर किसी प्रकार की राजनीति नहीं होनी चाहिए। साथ ही भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। यह किसी को तोड़ती नहीं, बल्कि जोड़ने का काम करती है। सत्तारूढ़ दलों के शीर्ष लोगों को भी अपने मन से हीन भावना का त्याग कर हिन्दी को नेपाली के बाद द्वितीय भाषा का दर्जा दिलाने की ओर अग्रसर होना चाहिए। उनके इस कदम से देश के अलावा विदेशों में भी नेपाल की छवि साफ होगी। आम जनता कभी स्वयं को शास–प्रशासन से अलग रखकर नहीं सोचेगी।

सरकारी, गैर सरकारी संगठनों एवं राजनैतिक दलों द्वारा किये जा रहे प्रयास सार्थक होंगे। साथ ही, आनेवाले समय में हिन्दी के गौरवमय इतिहास की पुनर्स्थापना होगी। ऐसी कामना है।

कविता

मनुहार

रविशंकर सिंह
रानीगंज, वर्दवान
9434390419

बाबा! बहुत डर लगता है
अपनी जमीन से कटने का डर
नई जमीन पर बसने का डर
सामने एक अंधा कुआँ है
मैं उसमें धँसती जा रही हूँ
सवालों के सलीब पर खड़ी
मैं सोचती हूँ–
क्या सासु माँ, माँ जैसी ही होगी
ससुर तुम्हारी तरह नेह–छोह करेंगे
मेरे सपने का राजकुमार
दीखता तो भला है
क्या वह मेरे सुख–दुख सुनेगा
वह मेरा गुण गहेगा
मेरी पलकों से ढुलकते मोतियों का
मोल अब कौन देगा
सवाल मन में चुभता है
मन को हरदम मथता है
बाबा! मैं अपनी हँसी–ठिठोली
बचपन की तुतली बोली
आँगन में नीम तले छोड़ आई हूँ
घर के हर कोने में मेरी किलकारियाँ
रची–बसी हैं
उन्हीं से अपना मन बहलाना
माँ! मैं जब–जब आऊँ
मुझे वही लोरियाँ सुनाना
जिन्हें सुनकर मैं बड़ी हुई
तुम मुझे उन्हीं नजरों से देखना
जैसे तुमने मुझे पालने में देखा था
सब मुझे सयानी समझते हैं
तुम मुझे अपनी छुटकी लल्ली ही समझना
माँ! मेरी खातिर बस इतना ही करना।

आलेख

जलियाँवाला बाग

हत्याकांड की त्रासद दास्तान

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स
डी.लिट्. उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र
चंडीगढ़, मो0 9876301085

ब्रिगेडियर जनरल रिगीनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर द्वारा 13 अप्रैल 1919 को वैशाखी के दिन जलियाँवाला बाग, अमृतसर में एकत्रित निहत्थे एवं शांतिमय जन–समूह पर अंधाधुन्ध गोलियाँ बरसाकर सैकड़ों लोगों को मौत की नींद सुला देना और हजारों लोगों को जख्मी कर देना भारत एवं इंग्लैंड दोनों देशों में एक लंबा विवाद व प्रतिक्रिया का विषय रहा है। कट्टर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए जनरल डायर ब्रिटिश राज का मुक्तिदाता था, लेकिन राष्ट्रवादियों के लिए वह शांति का दुश्मन तथा निर्दयी खलनायक था, जिसने क्रूरता और अमानवीयता का कार्य किया। एक ही समय में और एक ही बार हृदयहीन डायर ने बिना चेतावनी दिए जलियाँवाला बाग में जो कत्लेआम किया, संभवतः यह अन्यत्र न पाई जानेवाली अपने किस्म की क्रूरतम त्रासदी है।

इस संदर्भ में यहाँ जनरल डायर के विषय में कुछ मनोवैज्ञानिक सवालों का उठना स्वाभाविक है। क्या डायर के स्वभाव में निर्दयता का कोई जन्मजात तत्व था?क्या वह कुछ अंश मानसिक तौर पर असामान्य व भुलक्कड़ था तथा धमनी काठिन्य जैसे रोग का शिकार था। क्या वह प्रतिशोधी, दुर्गाह्यी, विद्वेषी एवं महत्वाकांक्षी किस्म का व्यक्ति था?क्या एथरोसक्ले– रोसिस (खून की नाड़ियों में चर्बी जम जाना) और सेरीबलहेमरेज (दिमाग की नाड़ी का फटना) जैसे बीमारियों, जिनसे 23 जुलाई, 1927 में ब्रिस्टल निकट लोंग आस्टन में उसकी मृत्यु होती है, के अविकसित लक्षण उसमें पहले से थे?क्या उनमें सत्ता लोलुपता, नायकत्व लिप्सा एवं ख्याति प्राप्ति का जुनून था?यहाँ बताना जरूरी है कि इन सभी सवालों का सीधा संबंध डायर की उस राजकीय जीवनी से है, जो तत्कालीन पत्रकार और लेखक ईआन कॉलविन ने 1929 में लिखी थी। उल्लेखनीय है कि डायर के जीवन के तमाम प्रसंगों और वृतान्तों को जानने का एकमात्र स्रोत होते हुए भी इसपर इसलिए भरोसा नहीं किया जा सकता; क्योंकि डायर की पत्नी ऐनी डायन ने अपने पति की जीवनगाथा को अमर बनाने के उद्देश्य से अपने विवेक से केवल सकारात्मक विषय–अंशों को ही शामिल करवाया था। असल में, कॉलविन ब्रिटिश साम्राज्य का समर्थक होने के नाते इस पुस्तक में एक 'नायक' के रूप में चित्रित कर सका। लेकिन इस संदर्भ में निगेल कॉलेट अपनी बृहदाकार पुस्तक 'द बुचर आफ अमृतसर' में सावधान करता है कि जहाँ तक कॉलविन द्वारा लिखित तथ्यों की बात है, वे सही हैं। लेकिन उसके द्वारा अन्य तथ्यों का विलोपन चेतावनी देता है कि उसकी पुस्तक को विश्वसनीय स्रोत मानने तथा डायर की प्रस्तुत तस्वीर में पूरा यकीन करने में सचेत रहना चाहिए।

लेकिन प्रमाण के तौर पर ऐनी डायर के पास जो कुछेक पत्र एवं स्मृति चिह्न मौजूद थे और जनरल डायर द्वारा लिखित कुछ बिखरे नोट्स थे, वे डायर के स्वभाव, सोच और चरित्र संबंधी जानकारी देने में पर्याप्त थे। एक पत्नी के रूप में वह अपने पति के स्वभाव–ज्यामिति को भली भाँति समझती थी। परन्तु भावी पीढ़ियों को अपने पति संबंधी प्रतिकूल जानकारी देने में वह सदैव सावधान रही। दरअसल, जनरल डायर एक बीमार आदमी था, उच्च रक्तचाप के प्रभावाधीन था और उसकी धमनियों का लचीलापन कम हो गया था। यह भी कि 10 अप्रैल, 1919 को अमृतसर में पाँच अंग्रेजों की हत्या तथा एक अंग्रेज महिला मिल मार्सेला शेरवुड पर हुए आक्रमण के बदले की भावना ने डायर के विवेक को विचलित कर दिया था। अपने सैनिक जीवन में आधी दर्जन से अधिक पदोन्नतियाँ प्राप्त करनेवाला डायर स्वयं को ब्रिटिश साम्राज्य का सर्वाधिक हितैषी समझने लगा था। अहं एवं महत्वाकांक्षा के रथ पर सवार जनरल डायर ने प्रतिशोधवश ही जलियाँवाला बाग में एकत्रित लोगों को सजा देने के लिए गोलीकांड का षड्यंत्र रचा। ब्रिटिश इतिहासकार रूपर्ट फर्निएक्स की ऐतिहासिक गवाही से भी दो बातें सामने आती हैं। पहली–मानसिक असामान्यता के कारण डायर ने अविवेक से कार्य किया, यह न मूल्यांकित और विश्लेषित करते हुए कि वह क्या कर रहा है और दूसरी–डायर के सिर पर बदले की भावना सवार थी।

जब डायर ने जलियाँवाला बाग में प्रवेश किया तो उसके साथ कोई नागरिक अधिकारी नहीं था। यहाँ तक कि डिप्टी कमिश्नर माइल्ज इरविंग भी वहाँ मौजूद नहीं था। दिलचस्प है कि इससे पहले डायर कभी बाग में नहीं गया था। वह इसके नक्शे और रिहिल व प्लोमर के मार्गदर्शन पर ही भरोसा करता था। डायर ने कैप्टन ब्रिगज़ की ओर मुड़कर उससे पूछा कि बाग में एकत्रित लोगों की संख्या कितनी है। बिगज़ ने अनुमान से 5000 संख्या बताई। लेकिन उस समय बाग में स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों की संख्या लगभग 20000 थी। डायर ने उस समय लोगों को कोई चेतावनी देना भी जरूरी नहीं समझा। उसने तुरंत अपने सिपाहियों को 25 राइफेलमैन दायीं ओर तथा 25 को बायीं ओर तैनात कर दिया। यह सब कुछ तीस सैकेण्ड में हो गया और डायर ने सिपाहियों को गोली चलाने का आदेश दे दिया। शुरू में कुछ सिपाहियों ने हवा में गोलियाँ चलायीं। इस पर डायर ने चिल्लाकर कहा, 'नीचे, लोगों पर गोली चलाओ। तुम्हें यहाँ किसलिए लाया है?' इस वीभत्स दृश्य का रौंगटे खड़े कर देनेवाले शब्दों में अर्थर स्विन्सन ने वर्णन किया है। पन्द्रह मिनट तक गोली चलती रही। डायर के सिपाहियों ने 1650 राउण्ड चलाकर बाग को श्मशान बना दिया था। प्रत्येक राइफेलमैन को 33 राउण्ड चलाने को दिये थे और वे गोली–बारूद खत्म होने तक फायरिंग करते रहे। बाद में डायर ने सोचा और अधिक गोलियाँ होतीं, तो वे भी लोगों पर चलायी जातीं।

जनरल डायर सायं 5.30 बजे अपने पुलिस दल के साथ बाग से वापस आ गया। डायर ने भारत सरकार को सूचना दी कि गोलीकांड में 20000 लोग मारे गये। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 397 लोग मारे गये तथा 1200 घायल हुए थे। होम पॉलिटिकल रिपोर्ट के अनुसार मृतकों की संख्या 1000 से अधिक और घायलों की संख्या 1200 से अधिक थी। अमृतसर के ब्रिटिश सिविल सर्जन डॉ. स्मिथ ने 1800 से ऊपर हताहत लोगों की संख्या बताई थी। इस हत्याकांड को लेकर भारत और इंग्लैंड में अलग–अलग प्रतिक्रिया हुई। गाँधी ने कहा था, 'प्लासी के युद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव रखी, लेकिन अमृतसर ने इसे अंदर तक हिला दिया।' पंडित मोतीलाल नेहरू ने इसे 'दुखद घटना' कहा, तो रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस घटना को कानून के नाम पर पंजाब में एक 'जघन्य अपराध' बताया। सी.एफ एंड्रूज ने इस हत्याकांड को 'नृशंस एवं अमानवीय कार्य' बताया। भारत के राज्य सचिव मांटेगू ने 'निर्णय में भयंकर गलती– कहा। हर्बर्ट एसक्विथ ने कहा, 'ऐंग्लो इंडियन इतिहास के वृतांत में ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रारंभ से लेकर आज तक के संपूर्ण इतिहास में ऐसी अमानवीय घटना नहीं मिलती।'

ब्रिटिश लेबर पार्टी ने अमृतसर हत्याकांड को 'निर्दयी एवं बर्बर कार्रवाई' कहते हुए 24 जून, 1920 को सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास किया कि जनरल डायर पर इस अमानवीय कृत्य के लिए मुकदमा चलाया जाए तथा माइकिल ओ' डायर एवं चेम्सफोर्ड को वापस बुलाते हुए दमनकारी कानून को निरस्त किया जाए। विंस्टन चर्चिल ने 1920 में ब्रिटिश हाउस आफ कॉमन्स में जलियाँवाला बाग हत्याकांड के संदर्भ में अपने भाषण में कहा, 'ब्रिटिश औषध–कोश में 'आतंक' कोई उपचार नहीं है। करुणा की गैरमौजूदगी रही, जो अंग्रेजों और बोल्शेविकों में अंतर चिह्नित करती है।'

14 अक्टूबर, 1919 को लॉर्ड विलियम हंटर की अध्यक्षता में गठित जाँच समिति ने तर्क देते हुए जनरल डायर की कार्रवाई की भर्त्सना की। समिति ने कहा कि हमें ऐसा लगता है कि डायर ने देर तक लगातार गोली चलाने का आदेश देकर एक संगीन गलती की है। जनरल डायर और सर माइकिल ओ'डायर का तर्क था कि विद्रोह को दबाने के लिए गोली चलाना जरूरी था। इसपर कमेटी का कहना था कि विद्रोह तो कहीं भी नहीं था। लेकिन हंटर समिति का जातिगत आधार पर विभाजन होने तथा समिति के यूरोपीय सदस्यों और भारतीयों के बीच तीखी नोंक–झोंक के कारण जनरल डायर साफ बच गया। टाम्पसन की डायरी में 25 मई, 1920 को लिखे एक तथ्य से इस बात की पुष्टि भी होती है। अपनी कार्रवाई को संगत ठहराते हुए जनरल डायर ने 19 जनवरी, 1921 के 'ग्लोब' अखबार में 'डेंजर टू एम्पायर' शीर्षक लेख में लिखा, 'भारत स्वशासन नहीं चाहता, वह इसका अर्थ नहीं समझता। शिक्षित लोगों को ही अभिव्यक्ति एवं प्रेस की आजादी दी जा सकती है। भारतीय लोग ऐसी शिक्षा नहीं चाहते हैं। भारत में 'तुम विद्रोह नहीं करोगे' का ग्यारहवाँ ईश्वरीय आदेश लागू होना चाहिए। भारत में वह समय भी आएगा, जब सही और अच्छे आदेशों के प्रति उत्पन्न विद्वेष और विकृति के कारण सख्ती से काम लेना पड़ेगा। गाँधी स्वशासन द्वारा भारत का नेतृत्व करने में सक्षम नहीं है। ब्रिटिश राज अवश्य जारी रहेगा और सभी लोगों के लिए न्याय प्रशासन में दृढ़ एवं अटल रहेगा। 'मॉर्निंग पोस्ट' अखबार ने भी डायर का समर्थन करते हुए लिखा, यूरोपियन महिलाओं के सम्मान की रक्षा के लिए यह हत्याकांड जरूरी था। यूनाइटेड किंगडम की संसद में डायर की बहस के दौरान 'हाउस ऑफ कॉमन्स' ने अहम भूमिका और कार्रवाई को सेंसर किया। ब्रिगेडियर जनरल सुररीज ने भी डायर का पक्ष लेते हुए कहा, 'हम केवल सख्ती से ही भारत को काबू में रख सकते हैं।'

पंजाब में तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर माइकल ओ'डायर ने जनरल डायर की कार्रवाई का समर्थन करते हुए इस हत्याकांड को 'सही कार्रवाई' बताया। अपनी पुस्तक 'इंडिया ऐज आई न्यू इट' (1925) में माइकल ओ'डायर ने टिप्पणी की, 'पंजाबी लोग यह जल्दी ही समझ गये कि क्रांति एक खतरनाक चीज है।' लेकिन बाद की विकसित गतिविधियों ने सिद्ध कर दिया कि वह अपने कथित मूल्यांकन में गलत था। कुछ वर्षों के बाद अमृतसर हत्याकांड और पंजाब में उसके राजनीतिक दमनकारी शासन का बदला लेने के लिए ऊधम सिंह ने 13 मार्च, 1940 को लंदन के बीचोबीच कैक्सटन हॉल में उसे गोली से मार दिया। उधर लेफ्टिनेंट जनरल सर हैवलॉक हडसन, जनरल डायर को आदेश क्षेत्र से कार्यमुक्त किये जाने की सूचना दे चुका था। बाद में भारत के प्रधान सेनपति जनरल सर चार्ल्स कारमाइकिल मोनरो ने डायर को बताया कि वह अपने पद से इस्तीफा दे और उसे पुनः सेवा में नहीं रखा जाएगा। जनरल डायर के इंग्लैंड वापस आने पर उसे 26000 स्टर्लिंग पौंड की राशि दी गई, जो 'मॉर्निंग पोस्ट' अखबार ने एकत्रित की थी। तेरह महिलाओं की गठित समिति ने जनरल डायर को 'पंजाब का मुक्तिदाता' घोषित करते हुए सम्मान स्वरूप तलवार एवं कुछ राशि प्रदान की। इस घटना से अति उत्तेजित होकर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विरोध प्रकट करते हुए अपनी 'नाइटहुड' की उपाधि त्याग दी।

इसे जनरल डायर का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि जिस भारत की मिट्टी मुररी (अब पाकिस्तान) में उसने जन्म लिया, जिस भारतीय परिवेश, हवा, पानी और अन्न ने उसकी परवरिश की, जिस धरातल ने उसे तमाम पदोन्नतियाँ (लेफ्टिनेंट से कर्नल) प्रदान की और जिस स्वर्ण मंदिर में उसने माथा भी टेका था, उसी अमृतसर पवित्र नगरी में अपने निर्दयी, बर्बर, अमानवीय और बूचड़ हृदय का असली प्रमाण भी दे दिया। उसने ईसा मसीह की करुणा, सहानुभूति, मानवतावाद और सहयोग भावना को भी भुला दिया। जब उसे अपनी गलती का पश्चाताप हुआ, तब बहुत देर हो चुकी थी। वह 1921 में लकवाग्रस्त हो गया और फिर कभी ठीक नहीं हुआ। जीवन के अंतिम क्षणों में बड़बड़ाते हुए उसने कहा, ''मैं स्वस्थ नहीं होना चाहता। कुछ लोग कहते हैं, मैंने ठीक किया; कुछेक कहते हैं, मैंने गलत किया। मैं केवल मरना चाहता हूँ और मेरा ईश्वर ही जानता है कि मैंने सही किया या गलत।'' लेकिन जलियाँवाला बाग हत्याकांड में उसने ब्रिटिश भारत इतिहास का अमानवीय कलम से जो रक्तरंजित अध्याय लिखा, वह एक कुख्यात इबारत एवं अक्षम्य अपराध बनकर रह गया।

गीत

अश्विनी प्रजावंशी
भागलपुर
मो: 9304905854

देखो कैसा रूप मनोरम छायी सुन्दर हरियाली
मत काटो ये वृक्ष लताएँ नाच रही हैं मतवाली
यह प्रकृति तो सदा सुहागन
सबको आशिष देती है
तुम काटो या छाँटो इसको
सुन्दर गीत सुनाती है
इसे दर्द होता है लेकिन
यह गुमसुम–सी रहती है
सेवा त्याग तपस्या इसकी
यह प्रकृति दुख सहती है
प्रकृति तो माता है सबकी करती है यह रखवाली
वर्षा लाती त्राण दिलाती
जीवन सबको देती है
मीठी–मीठी गीत सुनाती

अमृत बूँद पिलाती है
स्वर्ग में भी कल्पतरु यह
मनोवांछित पावन ईश्वर–सा यह
मधुर प्रेम वरदायी है
क्षुद्र मानवो! अब भी जागो मत काटो यह हरियाली
लोग तरसते पानी को है
यह तो अपनी करनी है
पर्वत तोड़े वृक्ष को काटे
जैसी करनी भरनी है
अब भी चेतो वृक्ष लगाओ
घर आँगन की शोभा यह
जन–मन–गण यह भी गाता है
राष्ट्रधर्म का दोहा यह
प्रकृति तो छाया माया है लेकिन है यह रूपवाली

भूल गये क्या पीपल–छाया
जहाँ बुद्ध को ज्ञान मिला
आज भी वरगद–पीपल देखो
मस्त मगन यह थाती है
इसमें सुख–दुःख अनुभूति
यह तो सबका साथी है
प्रकृति का शोषण जब होगा तभी रहेगी हरियाली।

आलेख

भाषा का महत्त्व

आचार्य बलवन्त
विभागाध्यक्ष हिन्दी, बंगलोर
9844558064

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही करता है। भाषा के अभाव में न तो किसी सामाजिक परिवेश की कल्पना की जा सकती है, न सांस्कृतिक उत्थान और राष्ट्रीय प्रगति की। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान और इतिहास का आधार भाषा ही है। भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम ही नहीं, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संवाहिका भी होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। उसके शब्द परिवेश की आशाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं से संपृक्त होते हैं। भाषा की प्रकृति को पहचान कर ही उसके प्रवाह को अक्षुण्ण बनाया जा सकता है।

लार्ड मैकाले भाषा के महत्त्व को भलीभाँति समझता था। इस तथ्य की पुष्टि मैकाले द्वारा 2 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश संसद में दिए गए उसके व्याख्यान से हो जाती है, जिसमें उसने कहा था–''मैंने भारत के ओर–छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश को विजित कर लेंगे, जब तक कि हम इसके सांस्कृतिक और नैतिक मेरुदंड को तोड़ न दें। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगे कि जो विदेशी और अंग्रेजी में है, वह उनके आचार–विचार से अच्छा या बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे तथा वे एक पराधीन कौम बन जाएँगे, जो हमारी चाहत है।'' लार्ड मैकाले की शिक्षानीति भारतीयों को उनकी भाषा से पृथक् कर वैचारिक रूप से उन्हें पंगु बनाने की थी, उनके आत्मविश्वास को कमजोर करना था, जिसे हम नहीं समझ सके।

देश को गणतंत्र बनने के बाद भाषा की अहमियत हमें समझाने की कोशिश सोवियत रूस ने भी की थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को दृढ़ करने के उद्देश्य से एक भारतीय राजनयिक को सोवियत रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा गया, जहाँ उसने अपना कार्यभार ग्रहण पत्र अंग्रेजी में सौंपा। किसी भारतीय भाषा में न होने के कारण वहाँ की सरकार ने उस पत्र को स्वीकार करने से मना कर दिया और याद दिलाया कि अंग्रेजी गुलाम भारत की भाषा थी, अंग्रेजी में पत्र प्रस्तुत करना उसी गुलामी का प्रतीक है। फिर किसी गुलाम देश के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने का कोई औचित्य ही नहीं बनता। भाषा के सवाल पर सोवियत रूस की यह फटकार भाषा के प्रति हमारी उदासीनता का करारा प्रहार है।

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है–प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के एक स्कूल का दौरा करने गई। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा। केवल एक बच्ची ही राष्ट्रगान सुना सकी। यह देखकर महारानी प्रसन्न हो गयीं और उस बच्ची से कुछ माँगने के लिए बोलीं। बच्ची के मुँह से अचानक ही ये शब्द निकल पड़े–''हमारी शिक्षा का माध्यम हमारी भाषा फ्रेंच बना दीजिए।'' इसे कहते हैं–अपनी भाषा के प्रति अनुराग।

भाषा की अस्मिता का प्रश्न आज भी अनुत्तरित पड़ा है। अंग्रेजी शिक्षानीति के चलते न केवल हिन्दी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाएँ हाशिए पर आ गयी हैं। इन दिनों भारतीय जीवन में व्याप्त पाश्चात्य प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो अंग्रेजी की देन है। खान–पान, रहन–सहन, पठन–पाठन एवं विचार–विमर्श ही नहीं, संबोधन एवं अभिवादन की भाषा भी अंग्रेजी हो गई है। बाजारवादी शक्तियाँ विज्ञापन के माध्यम से हमारे संस्कार को बिगाड़ने पर तुली हैं। किसी समाज के संस्कार को बिगाड़ने के तमाम कारणों में व्यक्ति की बोलचाल व व्यवहार की भाषा को बिगाड़ देना भी मुख्य है। आजकल के विद्यार्थियों में अपनी भाषा के प्रति जो अनुराग होना चाहिए, उसका प्रभाव है। प्रायः देखने में यही आता है कि अध्यापक और अभिभावक हिंदी भाषा पर ध्यान कम ही देते हैं। आज के युवा कैरियर बिल्डिंग के नाम पर अपनी भाषा से विमुख होकर संस्कृति और सभ्यता से भी दूर होते जा रहे हैं।

हिन्दी के प्रति नवयुवकों के मन में जो उदासीनता है, उसका एक कारण हिन्दी को रोजगार की भाषा न बनाया जाना भी है। हिन्दी को रोजगार से जोड़े बिना वर्तमान युवा पीढ़ी के मन में हिन्दी के प्रति वह आकर्षण भाव नहीं जाग्रत किया जा सकता, जिसकी हम आशा करते हैं।

भाषा के प्रश्न को गंभीरता से लेते हुए उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम.एन. वेंकटचलैया और न्यायमूर्ति एस. मोहन की खंडपीठ ने यह निर्णय दिया था कि प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इसलिए कि मातृभाषा में दी गई शिक्षा ही संस्कृति एवं परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। संविधान के अनुच्छेद 350 (ए) के अनुसार प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ जुटाने का उत्तरदायित्व राज्यों तथा स्थानीय निकायों का है। कर्नाटक सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेश को स्वीकार कर एक साहसिक व सराहनीय कार्य किया, हालाँकि इसके क्रियान्वयन का अंग्रेजी मानसिकता के अभिभावकों ने जोरदार विरोध किया था, पर सरकार की दृढ़ इच्छा शक्ति के सामने उनकी चल न सकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत यह महसूस किया गया था कि एक संविधान, एक राष्ट्रध्वज एवं एक राष्ट्रगान की ही भाँति देश की एक राष्ट्रभाषा का होना भी आवश्यक है; क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र गूँगा होता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए जिन राष्ट्रीय नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उसमें महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। हिन्दी को संपूर्ण भारत की व्यावहारिक भाषा बनाने के अभियान में गाँधीजी का योगदान अद्वितीय है। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा के प्रति अपने निश्चय को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया–''मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को नुकसान पहुँचाना या मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रान्तों से पारस्परिक संबंधों के लिए हम हिन्दी सीखें। ऐसा करने से हिन्दी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। यह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्या में लोग जानते–बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो।'' सन् 1910 में गाँधीजी ने कहा था–''हिन्दुस्तान को अगर सचमुच राष्ट्र बनाना है, तो राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है।''

सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधीजी ने हिन्दी में भाषण देते हुए स्पष्ट घोषणा कर दी थी–''हिन्दी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है।'' एक भाषा, एक लिपि विषयक इसी अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि हिन्दी भाषा और देवनागरी का प्रचार–प्रसार देश के हित एवं एकता की स्थापना हेतु होना चाहिए। इस प्रस्ताव का समर्थन तमिल भाषा के मूर्धन्य अय्यर ने किया था। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समरसता को बनाए रखने में राष्ट्रभाषा की महत्ता को उन्होंने अच्छी तरह से निरूपित किया है–''हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने में एक दिन भी खोना देश को भारी सांस्कृति नुकसान पहुँचाना है। जिस प्रकार हमारी आजादी को जबर्दस्ती छीननेवाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सरलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबानेवाली अंग्रेजी भाषा को भी यहाँ से निकाल बाहर करना

चाहिए। देवनागरी के समान सरल, जल्दी सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई नहीं है ही नहीं। उर्दू और रोमन से भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मकता नहीं है, जैसा कि देवनागरी लिपि में।''

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीयता का स्रोत मानते थे। उनका कहना था–''कोई विदेशी भाषा हमारे देश की रक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्र के विकास के लिए स्वभाषा अनिवार्य है।'' उनके स्वभाषा का आशय हिन्द से ही था। टंडनजी न केवल हिंदी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक बनाए जाने के प्रबल पक्षधर थे। भाषा के साथ–साथ उसके सांस्कृतिक विकास पर भी उनका बल था। क्योंकि भाषा की संस्कृति ही उसे अपनी परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। भाषा का उसकी संस्कृति से गहरा संबंध है, संस्कृति शरीर है तो भाषा उसका प्राणतत्व।

इस बात को पुनः दोहराना चाहूँगा कि राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही किया जाने लगा था। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के प्रयासों से ही सितम्बर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा के विषय पर विचार विमर्श हुआ। 12, 13 एवं 14 सितम्बर, 1949 में सम्पन्न इस तीन दिवसीय सम्मेलन में उपस्थित 71 सदस्यों ने हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया एवं शासकीय प्रयोग हेतु भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप को अपनाने की बात तय हो गयी। हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव श्रीगोपाल स्वामी आयंगर ने रखा और उसका समर्थन श्री शंकर राव ने किया, जो अहिन्दी भाषी थे।

26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के दिन से 15 वर्षों तक हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी संघ की सह राजभाषा के रूप में जारी रखने और उसके बाद हिन्दी को पूरी तरह राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की योजना थी, पर ऐसा हो नहीं सका। नेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थपरता के चलते भाषा–प्रेमियों की हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाने की चाहत भेदभाव की भेंट चढ़ गई। मतों के गुणा–गणित के आधार पर अपनी महत्वाकांक्षाओं को साधने के लिए देश के तथाकथित कर्णधारों ने जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद एवं क्षेत्रवाद की भाँति भाषा को वाद–विवाद का विषय बना दिया, जिसमें उलझकर हिन्दी को उसका गौरव दिलाने का चिर–प्रतीक्षित स्वप्न, स्वप्न बनकर ही रह गया। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी देश की राष्ट्रभाषा का न होना देश की अस्मिता एवं उसके आत्मगौरव के साथ खिलवाड़ नहीं तो और क्या है?

वह भाषा, जो वंदेमातरम् और भारतमाता की जय के उद्घोष की उत्प्रेरिका रही हो, जिस भाषा ने भारतवासियों की सुप्त चेतना को झंकृत कर उनकी विलक्षणता का उन्हें बोध कराया हो; वह भाषा, जो स्वतंत्रता सेनानियों के अधरों का क्रांति–गीत बनकर व्यवस्था के आमूल–चूल परिवर्तन को आह्वान करती रही हो; वह भाषा, जो देश के विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच समन्वयात्मक समझ विकसित कर उन्हें आपस में जोड़कर रखने में समर्थ हो। जो भाषा देशवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मूल आधार हो, जोभारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में लिखी–पढ़ी, समझी और सराही जा रही हो, जो निकट भविष्य में विश्व की संपर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर हो, उस हिन्दी का अपनी ही भूमि पर अंग्रेजी के अनुवाद की भाषा बनकर निर्वासन की जिंदगी जीना दुखद ही नहीं, चिंताजनक भी है। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का उद्गार दर्शनीय है–''राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाजमी है। अगर संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है, तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा।''

अंग्रेजों ने भारत को कई स्तरों पर कमजोर करने की साजिश रची थी। हिन्दी और उर्दू के सवाल को हवा देकर सांप्रदायिक वातावरण को बिगाड़ने की उनकी कूटनीतिक चाल सफल भी हुई। सन् 1948–49 में भारत की 14 भाषाओं में 'हिन्दुस्तानी' का प्रवेश उनकी कुटिल मंशा का ही प्रतिफल था। वह हिन्दुस्तानी समझौते की भाषा बनकर रह गई, जो बोलचाल के लिए उपयुक्त तो थी, पर उसमें साहित्यिक सामर्थ्य का अभाव था।

भारतीय संविधान लागू होने पर हिन्दी को राजभाषा के रूप में मात्र घोषित कर 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी को राजभाषा का मान देते रहना और आशा रखना कि एक न एक दिन हिन्दी राजभाषा का गौरव प्राप्त कर लेगी, कितना हास्यास्पद है। केन्द्रीय गृहमंत्रालय द्वारा बनाए गए राजभाषा अधिनियम की धारा 3/1 के अंतर्गत शासकीय प्रयोजनों में हिन्दी में साथ–साथ अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में जारी रखने का निर्णय लिया गया, फिर राजभाषा अधिनियम की धारा 3/2 के अंतर्गत यह व्यवस्था कर दी गई कि जबतक भारत के एक भी राज्य की सरकार हिन्दी को अपने राज्य की भाषा के रूप में स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होगी, तबतक हिन्दी संघ की राजभाषा के रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकती। राजभाषा अधिनियम के इस शर्त समझौते ने हिन्दी को संघ की सशक्त राजभाषा बनने के सारे रास्ते ही अवरुद्ध कर दिये। इसलिए कि दक्षिण भारत का एक राज्य तमिलनाडु हिन्दी का प्रबल विरोधी ही है और पूर्वोत्तर स्थित नागालैंड राज्य अंग्रेजी को ही अपनी राजभाषा के रूप में अपना चुका है।

मैकाले द्वारा अपने होम सेक्रेटरी को लिखे गये पत्र की कुछ पंक्तियाँ यहा उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिसमें उसने अत्यन्त विश्वास के साथ कहा था–''मैं नहीं कह सकता कि भारत देश राजनीतिक रूप से आपके अधीन रह पाएगा, लेकिन इतना मैं अवश्य करके जा रहा हूँ कि यह देश राजनीतिक स्वतंत्रता पा लेने के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकेगा।'' उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके।

दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के प्रश्न पर इसकी अन्य भाषाओं को इसके समानान्तर खड़ा करने की बार–बार कोशिश की जाती रही है। बार–बार यह झूठी दलील दी जाती रही है कि हिन्दी के राजभाषा बनने से देश की अन्य भाषाओं की अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी, जबकि अस्मिता के संकट का भय देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं को हिन्दी से नहीं, बल्कि हिन्दी और अन्य प्रांतीय भाषाओं व उनकी बोली को अंग्रेजी से है।

हिन्दी राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है। समय की माँग है कि हम अंग्रेजी की मानसिकता का परित्याग कर भारतीयता के आदर्शों को अपनाएँ तथा हिन्दी को भारतीय संस्कृति के विकास का संसाधन बनाएँ। भारत को उसका खोया हुआ गौरव तभी प्राप्त हो सकेगा, जब यहाँ का हर पढ़ा–लिखा व्यक्ति अपने कार्य, चिंतन–मनन व आपसी संवाद अपने ही देश की भाषा हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में करे। अपना हस्ताक्षर तो यह अपनी भाषा में ही करे एवं हिन्दी को अपनी पहचान की भाषा बनाए। हिन्दी के प्रति हीन भावना से मुक्ति का मार्ग हिन्दी से निकलेगा। हिन्दी हमारे राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए वरदान सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। हिन्दी के माहात्म्य से संबंधित कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

''जन सामान्य की भाषा हिन्दी
जन–मन की जिज्ञासा हिन्दी
जन–जीवन में रची बसी
बन जीवन की अभिलाषा हिन्दी
सेवा भाव सिखाती हिन्दी
सबके मन को भाती हिन्दी
सबके दिल की बातें करती
सबका दिल बहलाती हिन्दी
स्नेह, शील, सद्भाव, समन्वय
संयम की परिभाषा हिन्दी। जय हिन्दी!''

आलेख

कितने रावण मारे

ज्ञानचंद मर्मज्ञ
थर्ड क्रॉस, केआर ले आउट
जेपी नगर 6 फेज, बंगलोर
मो. 9845320295

एक और दशहरा आया, रावण फिर मारा गया। बड़ी धूमधाम रही। रावण–दहन का सामूहिक कर्तव्य निभाकर लोग खुशी–खुशी अपने घरों को लौट आए। रावण को जलता देखकर लोगों को बहुत आनंद आया। एक बार फिर राम की विजय हुई और लोग आश्वस्त हो गए कि राम और रावण की कहानी सही ढंग से दुहरायी गयी। राम के विजय की खुशी में रावण के अस्तित्व को पूरे एक वर्ष तक भूल जानेवालों के मुखमंडल ऐसे चमक रहे होते हैं, जैसे रावण का आतंक सदा के लिए समाप्त हो गया है! बच्चे तो और भी आनंदित हैं। हों भी क्यों नहीं, इतने बड़े रावण को इतनी आसानी से मारना कोई साधारण बात तो नहीं होती। वैसे बच्चों के आकर्षण के और भी बहुत–से कारण हैं। किसी विकराल आकृति को धू–धू कर जलते हुए देखना भला किसे अच्छा नहीं लगता? बच्चे रावण के बारे में बहुत कम जानते हैं। इतना कम कि उन्हें सब कुछ एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं लगता। पापा ने रामायण की कहानी सुनाई तो थी, परन्तु यह नहीं बताया कि आज के संदर्भ में रावण को जलाने का औचित्य क्या है? बच्चों के लिए तो रावण–दहन बस एक आग का खेल है। उन्हें तो आग की ऊँची–ऊँची लपटें रावण से भी अधिक रोमांचक लगती है। बच्चे ही क्यों? भीड़ के अधिकांश लोग मात्र परंपरा निभाने के लिए यहाँ आते हैं, अगर ऐसा नहीं होता तो इन्हें इन लपटों की पीड़ा की अनुभूति अवश्य होती। जब ये लपटें विकराल रूप धारण कर खुशी में डूबी हुई भीड़ को देखती है, तो आक्रोश से भर जाती हैं और क्रोधित होकर पूछती हैं कि रावण–दहन का यह क्रम कबतक चलेगा? पूरी भीड़ इसपर मौन साध लेती है। कोई उत्तर नहीं देता। इतना ही नहीं, उसी युग में इसी अग्नि का उपयोग नारी की पवित्रता को सत्यापित करने हेतु किया गया था, ऐसे कितने लोग उस भीड़ में होते हैं, जिन्हें इन लपटों को देखकर सीता की अग्नि–परीक्षा याद आती है? उनके त्याग और समर्पण के बदले मिले अपमान के बादल कितने लोगों की आँखों से आँसू बनकर बह पाते हैं? इतनी भारी भीड़ में किसी को नारी की विवशता का स्मरण होता है क्या? अगर नहीं तो हम दशहरे के मेले में किस उद्देश्य से जाते हैं और वहाँ से क्या लेकर वापस घर आते हैं? अगर लपटों की ज्वाला ज्योति नहीं बन सकी, तो रावण दहन की सार्थकता क्या है? मात्र रावण का दहन कर देने से या उसे देखभर लेने से क्या हमारी परंपराओं में निहित उद्देश्य की पूर्ति हो पाएगी? हमारी परंपराएँ हमारी संस्कृति की प्राणरेखा हैं और इन परंपराओं को जीवित रखने के लिए हमें इनके मूल में जाना होगा, इनमें छुपे सनातन मूल्यवत्ता को पहचानना पड़ेगा। जीवन के संचालन के मागर्दशन से लेकर सामाजिक अनाचार, मूल्यहीनता व जड़ता से जूझने का अदम्य साहस और संकल्प देती हैं ये परंपराएँ। ये हमारी संस्कृति के चिंतन का मूर्त रूप हैं, जो सामाजिक विषमताओं एवं विद्रूपताओं से पनप रहे भटकाव की स्थिति में नव जागरण का उद्घोष करने की क्षमता रखती हैं। बस आवश्यकता है इनमें छुपे तत्वों को वर्तमान परिदृश्य में ढालकर उन्हें पहचानने की।

रावण जलकर भस्म हो जाता है, अग्नि की भीषण ज्वाला बुझ जाती है और इसी के साथ रावण–दहन से जुड़े अध्याय का एक बार फिर पटाक्षेप हो जाता है, परन्तु अनुत्तरित प्रश्नों की अनुगूँज उसी स्थान पर भटकती रहती है। जरा विचार करके देखिए, दस मुखवाले रावण का संहार करके राम ने तो अपने युग को बचा लिया, परन्तु हम अपने युग को किस रावण को मारकर बचाएँगे? हमें तो इस युग के रावणों को पहचानना भी नहीं आता। हम तो दस मुखों के रावण में ही हर रावण का प्रतिबिम्ब देखते हैं। क्या हमें पता है? समय के साथ रावण ने अपना रूप, रंग और ठिकाना सब कुछ बदल लिया है। आजकल रावण के दस शीश नहीं, बल्कि उसके चेहरे पर कई मुखौटे होते हैं। वह तरह–तरह के रूप धरता है। उसके अनगिनत रूप, रंग और चेहरे हैं। उसने अपनी लंका का विस्तार भी अयोध्या तक कर लिया है। इतना ही नहीं, आजकल एक रावण के अंदर अनेक रावण बसने लगे हैं। इसीलिए उन्हें पहचानना अत्यन्त कठिन है, तभी तो हमारे आसपास ही रहते हुए भी हमें उनकी भनक तक नहीं लगती। त्रेतायुग का रावण अत्यन्त पराक्रमी और विद्वान् था। वह अहंकारी और दुराचारी अवश्य था, परन्तु विवेकहीन कदापि नहीं था। राक्षस कुल में जन्म लेने के बावजूद उसने मनुष्यता के कई उदाहरण प्रस्तुत किये। कभी किसी की अनायास हत्या नहीं की। कभी दरिन्दा बनकर किसी स्त्री का शील भंग नहीं किया। वह स्त्री की मर्यादा का सम्मान करना जानता था। उसने सीता को अशोक वाटिका में कई महीने तक रखा, परन्तु उन्हें छुआ तक नहीं। यही गुण उसे आज के विक्षिप्त मानसिकतावाले रावणों से श्रेष्ठ बनाता है। आज के रावण त्रेतायुग के रावण से बहुत आगे निकल गए हैं। ये वासना ही अंधी गलियों में नंगे घूमते हैं और मासूम बच्चियों को नोच–नोचकर खाते हैं। सच कहें तो नारी देह को हवस का सामान समझनेवाले ये रावण राक्षस भी कहलाने के योग्य नहीं हैं। मानवता को कलंकित करते ये संवेदनहीन कलयुगी रावण रात–दिन शोषण, हत्या, भ्रष्टाचार, बलात्कार, आतंकवाद जैसे अनेक कुत्सित, असामाजिक और अमानवीय कृत्यों से अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे रहते हैं। कोई मासूम अनाथ हो जाए, किसी की माँग सूनी हो जाए अथवा किसी के जीवन की बगिया ही क्यों न उजड़ जाए, इन सबसे इन बहशी दरिंदों को कोई अंतर नहीं पड़ता। बस इन्हें अपनी सोने की लंका की चमक बढ़ने की चिंता रहती है। इनके लिए तो देश, समाज और मानवता सब कुछ दिखावा है। हर गाँव, शहर, गली, महल्ला, नुक्कड़ और चौराहे पर ये किसी न किसी रूप में घात लगाए मिल ही जायेंगे। वैसे तो इनकी भौतिक संरचना मनुष्यों से मेल खाती है, परन्तु मनुष्यता का मूलभूत आधार संवेदना इनसे कोसों दूर रहती है। मुख्यतः ये दो प्रजातियों में पाए जाते हैं। छोटी प्रजाति निर्बल और बेबस लोगों को लूटती है और बड़ी प्रजाति देश को लूटती है।

आप सोच रहे होंगे कि आखिर इतने सारे रावण आते कहाँ से हैं? आपको यह जानकर हैरानी होगी कि इन रावणों की उत्पत्ति, संरक्षण और वृद्धि के पीछे कहीं न कहीं हम ही उत्तरदायी हैं। पहले तो ये क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, आसक्ति, अहंकार, आडंबर और प्रदर्शन का रूप धरकर हमारे भीतर प्रवेश करते हैं, फिर हमारी भावनाओं को दूषित कर धीरे–धीरे हमारी संवेदनाओं की हत्या करने लगते हैं। हमारे रावण बनने की प्रक्रिया यहीं से प्रारंभ हो जाती है। इनकी उपस्थिति हमें सत्य से दूर ले जाती है और प्रतिपल अपनों के बीच अविश्वास और मतभेद का विष घोलती रहती है, फिर अकारण संशय और संघर्ष की स्थिति पैदा कर ये हमारे अंदर के मनुष्य को मारना शुरू कर देते हैं। अच्छे–बुरे की समझ समाप्त हो जाती है। आँखों पर रावणी पट्टी बँधी होने के कारण हमें कुछ सुझाई भी नहीं देता और हम जात–पात, धर्म–सम्प्रदाय, ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा जैसी अतृप्त मानसिक कुंठाओं के वृत्तीय–परिवेश में

घूमने लगते हैं। हमारी सोच का घनत्व इतना घट जाता है कि सात्विक विचार विलुप्त होने लगते हैं। और तामसी प्रवृत्तियाँ तीव्र गति से पनपने लगती हैं। अनैतिक कार्यों में रुचि बढ़ने लगती है। हमारा मनुष्य हमें बार–बार सचेत करता है, परन्तु हम उसे अपने हाथों से उठाकर दूर फेंक देते हैं, उसी क्षण हमारे अंदर का पनपता हुआ रावण अपनी पूरी शक्ति से हमें दबोच लेता है। रावणों की उत्पत्ति और उनका आधिक्य इस बात को दर्शाता है कि या तो अब राम जन्म नहीं लेते या फिर वे उदासीन होकर बैठ गये हैं। रावणों की इस भारी भीड़ में कुछ तो स्वेच्छा से बने हुए रावण हैं और कुछ को जबरन बनाया जाता है। दोनों ही स्थितियों में मानसिक दुर्बलता, नैतिक भटकाव और विखंडित इच्छा शक्ति रावण की उत्पत्ति के कारक होते हैं यह चिंता का विषय है कि आज समाज में रावण बनने और बनाने की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है।

रावण उस बुराई का नाम है, जिसका संहार त्रेतायुग में राम ने किया था। अभ्युदय काल से ही धरती पर अच्छी और बुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव रहा है। बुराई अपनी कालिमा को जितना भी बढ़ा ले, परन्तु अच्छाई की प्रखरता के समक्ष उसका टिक पाना सर्वथा असंभव है। अच्छाई और बुराई का यह द्वंद्वसदियों से चला आ रहा है और सृष्टि के रहने तक इसी तरह चलता रहेगा। परन्तु यह समय सिद्ध सत्य है कि बुराई की कालिमा अच्छाई की किरणों के सामने कभी टिक नहीं पाती। फिर भी अवसर देखकर बुराई अपनी परछाईं का कद बढ़ाने में लग जाती है। आज यही हो रहा है, हम बुराई को उसका कद बढ़ाने का अवसर दिये जा रहे हैं। स्वयं तो शिथिल पड़ गये हैं और राम के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम यह भूल गए हैं कि जिस प्रकार रावण अंदर विकसित हो रहा है, उसी प्रकार राम भी हमारे अंदर ही विकसित होंगे। बस आवश्यकता है अपनी इच्छा शक्ति और पुरुषार्थ पर लगे जंग को साफ करने की। अपनी चेतना और सोच को अंधेरी गुफा से बाहर लाइए और उन्हें सूरज की रथ पर बिठाकर विस्तार दीजिए, विश्वास कीजिए, जिस दिन आप ठान लेंगे, एक भी रावण जन्म नहीं ले पाएगा।

अंत में यही कहना चाहूँगा कि अपने बच्चों को रावण की उत्पत्ति और पहचान के बारे में बताना न भूलें और उसे यह भी कहें कि इन कायर, निर्दयी, बुद्धिहीन, चरित्रहीन, व्यभिचारी, विक्षिप्त, देशद्रोही रावणों की तुलना त्रेतायुग के महान पराक्रमी और विद्वान रावण से कभी न करें। साथ ही साथ यह भी स्मरण रहे कि जिन बच्चों से आप कल के राम बनने की अपेक्षा कर रहे हैं, अगर वे बच्चे आपसे पूछ बैठे कि आपने कितने रावण मारे?तो आप उन्हें क्या उत्तर देंगे?

कविताएँ

मीनाक्षी छाजेड़
13 चंडीतला लेन
टालीगंज, कोलकाता
मो0 9432206887

निश्छल कोश

उस अनोखी रात में
लावण्यमयी शबनम में भीगी
पारदर्शी बदली के घूँघट से
मोहित छवि देखी चंदा की
अलबेली थिरकन में बढ़ती
आँख मिचौली वह थी करती
सर्व सुधा की कमनीयता में
सर्वांग सुंदरी आलोकित होती
निस्तब्धता में था व्याप्त गुंजन
सर्वत्र कौंधता कोलाहलपन
आत्मकेन्द्रित हो चला मन
हृदय से हृदय का हुआ मिलन
सूक्ष्म चेतना से अनायास ही
विभ्रांति के जालों को तोड़ा
जो सौंदर्य समझा चंदा का
क्या वह था उसका
वह तो स्वयं बेजान है
बाहर अचेतन का पुतला
देखा तो महसूस किया वो
अंतर्मन का 'निश्छल कोश' था।

अटल सत्य

ध्वज उठाकर चल पड़े
उमंग गीत गाते हुए
लक्ष्य को साधकर
मंजिल को बढ़ते चले
कारवां जो चल पड़ा था
विविधता में एकता का
शून्यता में पूर्णता थी
'अटल' राग सुरबद्ध सजी थी
प्रतिकूल पवन वेग चला
पर कर्मपाल सीधा रहा
हटा न मुड़ा, अडिग चला
झंझावात से अदम्य लड़ा
वही शक्ति है, वही सार है
वही साहस–वीरता है
वही पौरुष कर्म है
विजयिनी मानवता वही है।

कहानी

पंचायत

धर्मेन्द्र कुसुम
जहाज घाट रोड
आदमपुर, भागलपुर
मो.–9934891141

सरपंच का बगीचा, गर्मी का महीना, आम के पेड़ के नीचे आठ–दस चारपाइयाँ.. .लोग बैठे हैं, सब जोश में हैं। सरवन पांडे सतलरायन से कनफुसकी कर रहे हैं। रमुआँ की आँखें लाल हैं। राघविंदर पंडीजी छिः छिः राम–राम कहकर युवकों को उकसाते हैं और इस पाप प्रसंग पर गोसामी तुलसीदासजी महराज की उक्तियाँ सुनाते हैं। रामभजन तिवारी दिशा–मैदान को जाते–जाते पंचायत में चले आये हैं, उनकी जनेऊ उनके कान पर है और लोटे को चूतड़ के बीच दबाकर खाट के निकट उकड़ूँ बैठ गए हैं। गाँव के तमाम नौजवान और कुछ बुजुर्गों के बीच कौसिलिया बैठी है। उसपर मुकदमा चला है, वह बदचलन है, गाँव के युवकों को खराब कर रही है, गाँव की नाक कटा रही है, बाम्हन की जात बिगाड़ रही है, कुल का नाम मिटा रही है–ऐसे ढेरों लांछन हैं उसपर और इन आरापों का सबसे पुख्ता प्रमाण यह है कि कौसिलिया के पेट में पूरे नौ माह का गर्भ पल रहा है, जबकि उसे मसोमात हुए तीन साल बीत चुके हैं।

घुनसुन चल रही है, युवक उत्तेजित हैं। बाम्हन की नाक कट गयी, कुल–खानदान की मर्यादा मिट्टी में मिल गयी। जबकि इसी पंचायत में उपस्थित कुछ युवक ही भीतर डरे हुए भी हैं कि कहीं उसी का नाम न बोल दे। बुजुर्गों में भी कई दुबके–सहमे हैं कि अब तो कौसिलिया की जुबान पर उनका नाम आएगा ही। हालाँकि, ऐसे सशंकित युवकों और बुजुर्गों ने मन ही मन योजना भी बना रखी है कि ऐसी नौबत आयी, तो कैसे ढिठाई से उसका प्रतिरोध कर इल्जाम को झुठलाना है, चाहे माता भगवती की झूठी कसम खानी पड़े अथवा ग्रामदेवता के मंदिर में ही क्यों न घुसना पड़े। फिर भी एहतियातन पिछली रात से पंचायत में हाजिर होने के पूर्व तक वे लोग कौसिलिया को ढेरों प्रलोभन देते रहे–'तुम हमारा नाम नहीं कहना, हम तुम्हारा हर तरह से साथ देंगे।' युवकों और बुजुर्गों के 'इस तरह' मदद करेंगे और 'उस तरह' बचा लेंगे के आश्वासनों के बीच मंदिर के पुजारी बाबा ने तो उसे यहाँ तक कह दिया कि 'ठाकुरबाड़ी के बाइसो बीघे की सारी कमाई हम तुम्हारे चरणों में अरपित करते रहेंगे, तुम मुझे बखस दो कौसिलिया।' लेकिन वह किससे क्या कहती ?क्या जवाब देती ?बस चुप थी।

यह चुप्पी तो तभी उसके भाग्य में आ गयी थी, जब उसने नैहर में खेत से अकेली लौटते समय जोरामन ठाकुर द्वारा छेड़खानी किये जाने पर उसके दायें हाथ में दाँत काट ली थी और भागकर बाप की गोद में दुबक गयी थी। बड़ा हल्ला हुआ था। जोरामन ने न जाने किस–किस का नाम उसके साथ जोड़कर उसे काफी बदनाम किया था। बात पंचायत तक पहुँचने ही वाली थी कि उसके पिता रामशरण पुरोहित ने अपनी लाज बचाने के लिए समीप की एक बस्ती के पचास बरस के दोबीहे मंगल पांडे से गाँव के ही शिवमंदिर में उसकी शादी करवा दी।

न बारात आयी, न बाजे बजे, न औरतों ने गीत गाये और न उसने जाना कि लड़की अपने मायके से विदा होती है। मरतुकहा बैल के जोड़े में जुती बैलगाड़ी पर एक गठरी की तरह उसे लाद दिया गया था और सिकुड़ी–सिमटी यह गाँव चली आयी थी। कच्ची सड़क पर डोलती–खड़कती बैलगाड़ी जब उसके पचासवर्षीय पति के दरवाजे पर रुकी, तब उसने घूँघट की आड़ से देखा था, नाद के किनारे पसरे गाय–बैल की गू–मूत के बीच ही उसके आंगन का दरवाजा है। वह कुछ देर इस इंतजार में बैठी रही कि आंगन से दो–चार औरतें निकलकर उसकी अगवानी करेगी, लेकिन जब ऐसा कुछ नहीं हुआ तो भरे मन से वह स्वयं नीचे आ गयी और गाड़ीवान के पीछे चलकर आंगन पार कर गयी। पीछे से उसका पति नामधारीजीव भी उसके पास आया। गाड़ीवान जब बैलों को नाद में कुट्टी–सानी–पानी देने चला गया, तब वह घर में घुसकर सिसक पड़ी–''हे सुरूज भगवान! या महावीर सुआमी! यह किस जलम की सजा दे दी तुमने?'' इस बीच मंगल पांडे भी जलावन का इंतजाम करने आंगन से बाहर निकल गया था। वह बिछावन पर पड़ी–पड़ी देर तक रोती–कलपती रही थी। उसे नैहर की याद आई, बड़की भौजी जब नयी–नयी ब्याह कर आई थी तो वह कितना उमताई थी, गीत गा–गाकर–''एंड़ी नुंगा ढोढ़ी गे, वहाँ खाय रहैं खेढ़ी गे, बनजरबा के बेटी।'' भौजी खिल–खिल हँसने लगी थी। भैया ने धीरे से भौजी को कहा–''जल्दी दे दो इसको एक पचटकिया दुआर छेकाई, नहीं तो सुनाएगी यह बनरमुहियाँ एक हजार ऐसे ही गीत।'' भौजी देर तक ठिठियाती रही थी और एक वह है।

मंगल पांडे जब लौटा, तब उसके पीछे मैले–कुचैले कपड़ों में लिपटी एक औरत भी आयी थी। यह उसने बाद में जाना कि वह गाड़ीवान मंगरू की बहू फुलवा थी। उसी ने रोटी, दाल और बैगन का भरता बनाया और वही परोसकर खिलाने भी आयी थी। उस समय उसका जी हुआ, वह अपने बाप को ढेर सारी गालियाँ दे, उसकी निर्ममता पर थूके, लेकिन दो रोटियाँ खाकर अपना दुःख दबा गयी वह।

उस रात इंजोरिया रात थी। ओसारे की मचिया पर बैठकर मंगल ने खैनी मली और होंठ में ठूँसने के कुछ देर बाद पच्च से थूक देहरी पर थूक दिया, तो कौसिलिया को उससे और भी घिन हो आयी। घर के कोने में बने ताखों पर रखी ढिबरी जल रही थी। बाँस की बत्ती से गुंथी खिड़की से छनकर उसकी खाट पर पसरी चाँदनी उसे अच्छी लगी, वह लेट गयी और लेटे–लेटे पता नहीं कब सो गयी। नींद में ही उसे लगा कि कोई उसे नोंच– खसोट रहा है, वह चीखकर उठ बैठी। सन्न, अवाक् और बहुत कुछ अपराध की भावना से ग्रस्त मंगल बाहर निकल गया और चटाई बिछाकर ओसारे में लेट गया। वह फिर सो गयी।

सुबह बाँसबाड़ी में हो रही बगुले की आवाज और कौए की काँव–काँव ने उसे जगा दिया। मंगल बैल के कंधे पर जुआ रखकर हल उठाये जा रहा था। काफी देर इंतजार के बाद भी जब फुलवा नहीं आयी, तब कौसिलिया ने जाना कि मंगरू और उसकी बहू फुलवा की सेवा बस एक दिन के लिए ही था। अब घर के सारे काम उसे स्वयं करने हैं। दोपहर में मंगल घुटने तक कीचड़ से लथपथ पसीने–पसीने होकर पहुँचा। जब वह कुएँ पर स्नान करने गया, तबतक उसने उसके लिए ओसारे पर खाना लगा दिया। परोसा खाना देखकर मंगल चौंक उठा था, जिस औरत ने रात में सटने नहीं दिया, उसी ने उसके लिए कितने जतन से खाना परोसा था, लेकिन वह कुछ बोल नहीं पाया।

इसी चुप–चुप और कर्तव्य निर्वाह में दिन बीतता रहा। करीब छह महीने बीत गये होंगे, जब एक बरसाती रात के अंधेरे में बादल टकराने की भयावह आवाज से डरकर वह ओसारे पर सोये मंगल के पास चली गयी थी। वहाँ उसने देखा कि वर्षा के छींटों से भींगता–बचता मंगल एक कोने में टाट से

सटकर बैठा था। मंगल की ऐसी विवशता के लिए उसने अपने आपको धिक्कारी और उसका हाथ पकड़कर अपने साथ अंदर ले गयी और उसे वह सब कुछ भी कहने–करने दिया, जो एक पति अपनी पत्नी के साथ कह–कर सकता है। तब बादल टकराने की भीषण गरज भी उसे भयावह नहीं, बल्कि सुहानी लगने लगी थी। उस रात रुक–रुक कर ही सही लेकिन बादल कई बार जमकर बरसा था। महीनों की गर्मी की तपी धरती सुबह गीली होकर कमल के कुम्हलाए फूल की तरह अलसायी पड़ी थी। कौसिलिया को लगा उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे, बल्कि आसमान में उड़ रहे हैं।

उसके बाद मजे के दिन थे और मौज की रातें। अगहन का महीना आ गया था। धान पक रहे थे। जोगवारी के लिए मंगल रात में खेत पर ही खोपड़ी बनाकर रहने लगा था। इस बीच एक दिन जब वह दोपहर में खाना खाने घर आया, तो फिर जा नहीं सका। उसके बायें अंग ने काम करना बंद कर दिया था। उसके इलाज के लिए उसने फसल, जेवर–जाल सब कुछ वैद्य–डॉक्टर, झाड़–फूँक और दवा–दारू के पीछ होम कर दिया, लेकिन...। लाचारी ने उसका पाँव घर से बाहर करवा दिया। खेती–पत्ती का सारा कार्य भी अब उसे ही करना पड़ रहा था। वह पति के जीते जी मोसमात हो गयी थी।

कुछ अर्से बाद एक दिन वह सचमुच मोसमात हो गयी। समाज से मंगल का बहुत गहरा रिश्ता नहीं था, लेकिन उसकी मौत के बाद श्राद्धकर्म के नाम पर उसे ढेर सारे विधि–विधान करने–करवाने और पूरे गाँववाले को दो शाम भोज खिलाना ही पड़ा।

इस सबसे निभ–निबटकर अकेली रह गयी कौसिलिया। औरत की जात और छट–छट करती जवानी, आगे पहाड़–सी जिंदगी। घर से खेत और खेत से मजदूरों के साथ खुद से लड़ती उफनती कौसिलिया जब लौटकर घर आती तो उसे मंगल की याद बेहद सताती।

घर की खेत की दूरी मात्र पावभर जमीन थी। रास्ते में आम का बगीचा, बगीचे के बाद ठाकुरबाड़ी और उसके पीछे उसका अपना खेत। ठाकुरबाड़ी के पुजारी बाबा उसे अच्छे लगते थे। वह अक्सर खेत आते–जाते उनका भजन सुनने रुक जाया करती। गीता के श्लोकों के साथ–साथ बाबा जब भक्तजनों के समक्ष रामचरितमानस की पंक्तियों को गाते कि ''जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहिं न कछु सन्देहू।।'' तो कौसिलिया को लगता कि एक न एक दिन उसके भी दिन बहुरनेवाले हैं, आखिर भगवान को तो वह रोज ही पूजती है और सारे नेम–धर्म भी करती ही है। कभी अकेली रहती तो भजन के अतिरिक्त पुजारी बाबा उसे गाँव के गुजरे वक्त की कहानी भी सुनाते।

एक दिन ऐसे ही शाम के समय ठाकुरबाड़ी में पुजारी बाबा से गाँव के बीते दिनों की कथा सुनने बैठी, तो समय का कुछ ध्यान ही न रहा। शाम रात में बदल चुकी थी। घर जाने के लिए उठी तो वर्षा ने रोक दिया। वर्षा के साथ बहती तेज हवा ने मंदिर के बरामदे पर रहना मुश्किल कर दिया, तो वह मंदिर के पिछवाड़े में बने बाबा के कमरे में चली गयी।

सचमुच, उस रात ही कौसिलिया के साथ घोर अन्याय हुआ, जिसके फलस्वरूप धरती फट जानी थी, आसमान को टूट गिरना था; लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। भोर में वर्षा थमने पर कादो–पानी में छप–छप करती कौसिलिया जब घर पहुँची, तब उसका तन–बदन जल रहा था। वह बड़बड़ाती हुई पुजारी को गरिया रही थी; लेकिन देह की भूख, जिसे पुजारी ने जगा दिया था, उसका क्या करे वह? उत्तर ढूँढ ही रही थी कि बाहर से हरगोविन की आवाज सुनाई पड़ी–''भौजी, भौजी! कौसिलिया डूबते–डूबते को तिनके का सहारा पा गयी। हरगोबिन ने उसे डूबने से क्या बचाया कि उसके पाँव दलदल में धँसते ही चले गए।

फिर, पता नहीं कितनों के साथ उसका हँसी–मजाक हुआ और कितनों के साथ देह–संसर्ग। गिनने बैठेगी तो पता नहीं आँकड़ा कहाँ तक पहुँचे, वैसे ज्यादा पढ़ी–लिखी भी वह नहीं ही है। इस तरह तीन साल बीते, लेकिन कुछ महीने पहले उसे लगा कि उसके पेट में पौधे उग रहे हैं। आशंका के मद्देनजर उसे बालगोबिन वैद्य से सहायता की गुहार लगायी और वैद्य ने गर्भावस्था के बावजूद उसकी देह के बदले उसे ढेरों जड़ी–बूटियाँ दीं, लेकिन उसे आज की पंचायत में हाजिर होना लिखा था, होनी होकर ही रहती है।

पंचायत में कोलाहल बढ़ गया था। वह यादों के ही जंगल से निकलकर हिंस्र मानवों के बीच आ गयी थी। प्रसव काल निकट होने के कारण देर तक उकड़ूँ बैठना उसके लिए कष्टकारक था, लेकिन घर जाकर लेट भी तो नहीं सकती थी। पंचायत में घुनसुन बढ़ गयी थी। 'इसका सिर मुंडवाकर गाँव से बाहर कर देना चाहिए, कलयुग है कलयुग।' जितने मुँह उतनी बातें। शोर तब कुछ कम हुआ, जब पुजारी बाबा के साथ सरपंच और मुखिया पधारे।

कुछ देर बाद पंचों के नाम की घोषणा हुई–सरवन पांडे, सतलरायन तिवारी, राघविंदर पंडीजी, हीरामन सास्तरी और बालगोबिन वैद्य। तय हुआ कि पाँचों के राय–मसविरे के बाद पुजारी जी फैसला सुनायेंगे। कौसिलिया का जी हुआ कि सारे लोगों के बीच वह पुजारी बाबा की रामनामी चादर उतार दे और बता दे कि यही वह चादर है जिसपर... और यही वही आदमी है जिसने...। लेकिन, कौन करेगा उसकी बात पर विश्वास? लोग कहेंगे पापिन तो थी ही, पागल भी हो गयी है, पत्थर मार–मारकर जान ले लेंगे उसकी। ऐसा सोचकर ही वह पसीने से तर–ब–तर हो उठी। अचानक उसे काफी दर्द हुआ, वह बेहोश हो रही थी। शायद बेहोश हो भी जाती, तभी उसे लगा कि उसकी कमर के नीचे दोनों जाँघों के बीच किसी ने चाकू घोंप दिया है। उसने तड़पकर हत्यारे को देखने के लिए अपनी आँख खोली, लेकिन सामने नवजात शिशु को देखकर चकित रह गयी। उसके हाथ हिले, लेकिन नवजात का स्पर्श करने के पहले ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

पंचायत में अब इस बात पर विचार–विमर्श चल रहा था कि कौसिलिया का शवदाह गाँव के पास ही नदी किनारे करना है कि बरारी घाट पर। नवजात के करुण–क्रंदन से धरती फटी जा रही थी, लेकिन उससे बेखबर पंचों और पंचायत में उपस्थित सभी लोगों की गिद्धदृष्टि कौसिलिया के डीह और जोतवाली जमीन पर टंग गयी थी।

आज विश्व में अभाव, प्रताड़ना, असुरक्षा, विकृतियाँ, अपराध, घृणा, द्वेष, स्वार्थ और हिंसा एक सामाजिक जीवनशैली हो रही हैं, मर्यादाएँ और संवेदनाएँ जहाँ कराह रहीं हैं, वहाँ आज साहित्यकार को एक नई सामाजिक व्यवस्था हेतु क्रांति यज्ञ की समिधा बननी होगी। अपनी जिम्मेदारी से जनता को दिशा, आत्मा, संकल्प और सोच से मानवीय पक्ष में जोड़ना होगा। चाहे समाज को इसकी चिंता हो या न हो, पर साहित्य और साहित्यकारों को समाज की चिंता करनी होगी।

सुसंभाव्य

कहानी

मंगलसूत्र

नरेन्द्र किशोर सिन्हा
रोड नं. 01 ई, आदर्शनगर समस्तीपुर
मो.–8969358434

बीते दिनों की स्मृतियाँ...। स्मृतियाँ ही तो शेष हैं, अब मेरे इर्द–गिर्द...। लाख रोकने पर भी आँखों से अश्क छलक ही जाते हैं। उस दिन ज्योति की कही बातों में भविष्य के संकेत किस गहराई से छिपे थे।

''रिश्ता, परिवार, समाज आदि कोई फिल्म नहीं कि एक स्क्रिप्ट पर रिहर्सल शुरू किया, कुछ दिन बाद पंसद नहीं आया तो उसे छोड़कर दूसरे स्क्रिप्ट पर काम शुरू कर दिया। मगर रिश्तों में ऐसा नहीं होता, रिहर्सल काम नहीं आती। यहाँ संवेदना, यथार्थ, मर्यादा, ईमानदारी, भरोसा आदि ऐसे अवयव हैं, जिनका बहाव अंदर ही अंदर इन रिश्तों की शिराओं में होता रहता है और यही तरलता पारस्परिक रिश्तों को सफल और सुदृढ़ रखती है। इसलिए मेरी मान्यता है कि जो व्यक्ति अपने दाम्पत्य संबंधों की जड़ों की मजबूती को नहीं बनाये रख सकता है, उसकी विश्वसनीयता संदेहास्पद ही रहेगी। धन्यवाद!''

ज्योति ने जैसे ही धन्यवाद कहा, सभागार में तालियाँ गूँजने लगीं। अवसर था–'स्वच्छंदता : रिश्तों के विघटन का एक कारक' विषयक अंतर्महाविद्यालीय वाद–विवाद प्रतियोगिता का। ज्योति ने अपने उपर्युक्त विचार रखे और विजेता भी घोषित हुई। यूँ तो वह लोगों से कम बात करती थी, लेकिन मंच पर उसका कोई मुकाबला नहीं था। अभी तक उसने जितने भी वाद–विवाद प्रतियोगिता में हिस्सा लिया, प्रथम स्थान ही प्राप्त किया। इसलिए प्रथम आना उसके लिए कोई नयी बात नहीं थी।

ज्योति खूबसूरत और कोमल लड़की थी। फूलदान के फूल जैसा, प्रकृति के हाथों निरंतर काट–छाँट जिसका सौंदर्य गढ़ा हो। जो बारिश के पानी से पल्लवित–पुष्पित हुआ हो। सुंदर और सौरभमय जीवंत फूल। जब जीवित रहे, तब चारों तरफ अपने प्राणतत्व से हरे–भरे रहे, जब समय आया, तब अपनी माँ की गोद में झड़ पड़े।

संध्या हो चली थी। आकाश स्वच्छ था। सुनहरी किरणें शून्य आकाश में कुछ ढूँढ़ रही थी। ज्योति की भंगिमा में भी एक आकांक्षा अवश्य दिखी। मैं खड़ा–खड़ा उन बड़ी–बड़ी आँखों की ज्योति लूट रहा था। आकाश में तारों को देखा या उन जगमग आँखों को देखा, बात एक ही थी। हम दूर से तारों की सुंदर आकृति को बार–बार देखते हैं, लेकिन वह निश्चेष्ट ज्योति सचमुच भावहीन है या आप–ही–आप अपनी अंतर–लहरी से मस्त, इसे जानना आसान नहीं। जैसे ही ज्योति अपना पुरस्कार लेकर मंच से उतरी, मैंने उससे हाथ मिलाते हुए उसे बधाई दी। उसे शायद जरा–सी असहजता महसूस हुई। अक्सर उसे अनेकों से हाथ मिलाना पड़ता है, मगर इस तरह का अहसास शायद उसे कभी नहीं हुआ। उसने सामान्य बने रहने की कोशिश की और मुस्कुराते हुए शुक्रिया अदा कर तेजी से बाहर निकल गई। इसे देखकर मेरे दिल में ख्वाब ऐसे मचलने लगे, जैसे कृष्ण ने गोपियों के मटके को तोड़कर उनके अंदर के किले को तोड़ डाला हो।

ज्योति बी.ए. ऑनर्स फाइनल की छात्रा थी। पिता एक सेवानिवृत्त स्कूल शिक्षक और माता समझदार व सुघर–गृहिणी। परिवार में खुलकर विचार–विमर्श करने का वातावरण होता था। पारिवारिक और सामाजिक मुद्दों को लेकर उसे चेतना एवं सजगता अपने परिवार से ही मिली थी–पारिवारिक पाठशाला से ही। पिता अक्सर उससे कहा करते, तुम्हें अपने पैरों पर खुद खड़ा होना है, आगे बढ़ने के रास्ते खुद तलाश करना। पिता की एक–एक बात को उसने अपनाया। पिता की साधारण आय से अपने लिए पढ़ने के रास्ते निकाले।

दिन गुजरते गए, लेकिन उस स्पर्श का अहसास उसे जब–तब गुदगुदा जाता। इस ख्याल को वह बार–बार झाड़ने की कोशिश करती, मगर उसका अक्स खत्म नहीं होता। उसका उद्देश्य तो लेक्चरर बनने का था, जिसके लिए वह खुद को तैयार भी कर रही थी। अंतर्मुखी ज्योति किसी प्रेम पाश में बँधना नहीं चाहती थी, जो उसके उद्देश्य प्राप्ति की राह में बाधक सिद्ध हो। पुनः एक दिन 'सूर साहित्य में सौंदर्य बोध' विषयक एक संगोष्ठी में वह बड़े मगन से वक्तव्य सुन रही थी कि पीछे मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। उसने अचानक उसी स्पर्श को अपने कंधे पर महसूस किया। क्षण भर के लिए समतल जल उलट–पलट हो गया। मुड़कर देखा तो वही चेहरा सामने नजर आया, जो उसके अवचेतन में घूमता रहता था जब–तब। टूटती शाख–सी लरज गई ज्योति 'हैलो' बड़ी मुश्किल से उसने मुस्कुराकर कहा। इतना सुनना मेरे लिए पर्याप्त था उसके करीब आने के लिए। मैं बिना उसकी अनुमति के लपककर आगे आ गया और उसके बगलवाली सीट पर बैठ गया। बीच–बीच में मैं संगोष्ठी में बोले जा रहे वक्तव्यों पर अपनी टिप्पणी भी दे रहा था। ज्योति संगोष्ठी सुन रही थी और मुझे भी सुन रही थी उसी तन्मयता से।

जिंदगी के सफर में कभी–कभी आप महीनों–बरसों किसी के साथ ढेरों बातें करते चले जाते हैं, आपमें अपनत्व नहीं जगता। कभी–कभी किसी के साथ घंटों बैठकर भी बात कुछ भी नहीं होती, फिर भी वो आपको अपने दिल के बहुत करीब लगता है। आप समझ नहीं पाते कि कौन–सी मूक और अदृश्य लिपि दो लोगों के बीच बतिया रही होती है। कुछ यही अवस्था ज्योति की भी थी, वह खामोश थी, मगर उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह बरसों से मुझसे बातें करती आ रही हो।

''मेरा नाम दिवाकर है और मैं दो महीने पहले एम.डी.डी.एम. कॉलेज में हिन्दी के व्याख्याता के पद पर आया हूँ। आपसे फिर कभी भेंट हो सकेगी, सोचा न था, हालाँकि आपसे मिलने की ख्वाहिश जरूर रहती थी।'' मैंने उसकी खामोशी भंग करने की कोशिश की। संगोष्ठी खत्म होने के बाद मेरे आग्रह पर ज्योति साथ चाय पीने कैंटीन में आ गई। हम दोनों ने साथ–साथ चाय पी। फिर ज्योति ने 'जी शुक्रिया' कहते हुए हमसे विदा ले ली।

मुलाकातों का सिलसिला चल पड़ा। ज्योति हमेशा कम बोलती और ज्यादा सुनती। मैं ही सिर्फ बोलता रहता। कभी–कभी मैं उसकी खामोशी से उकताकर उसे कुछ कह देता तो वह मुस्कुरा कर कहती–'आपकी हर बात मुझे पसंद है।' मैंने हठात् उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसी पल कामदेव ने वहाँ आकर अपनी किताब का पहला पृष्ठ खोला।

एक दिन शाम का वक्त था। हम दोनों खामोशी से नदी के किनारे हाथों में हाथ लिये बैठे थे। नदी भी खामोश थी। लेकिन आस–पास बड़ा कोलाहल था। सब अपनी–अपनी दुनिया का शोर लिए भाग रहे थे। मगर हम दोनों अभी भी खामोश थे। इस नयी दुनिया के शोर ने हमारे अंतस में तूफान मचा रखा था। शायद हम प्रेम के अर्थ को समझने की कोशिश कर रहे थे। तभी मैंने खामोशी को तोड़ते हुए कहा–'क्या मुझसे शादी करोगी?'

नदी शांत थी...।

मन भी शांत था...।

हम दोनों ने नदी का जल अपनी अंजरियों में भरा और इस नई दुनिया के शोर को खत्म करने की कसमें खायीं, फिर एक दूसरे को चूमा भी।

हमारे परिवारों ने इस रिश्ते पर अपनी सहमति की मुहर लगा दी। जो ख्याल पूरे शरीर में सिहरन पैदा कर देते थे, अब वह हकीकत में बदल चुके थे। हम दोनों घुल–मिल चुके थे एक–दूसरे में, जैसे अंधेरे में उजाला और उजाले में अंधेरा। मैंने पहली रात की सौगात के रूप में ज्योति को एक मंगलसूत्र दिया।

जब ज्योति नये साँचे में ढलकर आयी, वह और भी सुंदर दिखने लगी। वह अब हरी साड़ी पहनकर, सिर पर सिन्दूर रेखा सजाती। हाथों के कंगन, कानों की बाली, गले में मंगलसूत्र दिन–दिन उसके चित्त को नचाये रखते थे। जब कभी वह सज–धजकर चाँदनी में कोठे पर उतरती और वासंती पवन उसके आंचल से मोतियों की लपट लाकर मेरे बरामदे में भर देता, फिर किसी मतवाली माधुरी या तीव्र मदिरा के नशे में मेरा मस्तिष्क घूम जाता। कभी–कभी उसके प्रफुल्ल बदन पर उस लोक–आलोक की छटा पूर्वजन्म की स्मृतिवत् चली आती थी और आँखें उसी जीवंत सुंदर झिकमिक का नाज दिखाती थी। जब अंतर प्रसन्न हो, तो बाह्य व्यवहार पर उसका प्रतिबिम्ब क्यों न पड़े! अंतस् के उल्लास का बाह्य स्फोट स्वाभाविक ही तो है।

साल–दो साल कट गये। फिर भाग–दौड़। मैं जहाँ कक्षाएँ, सेमिनार, मीटिंग्स आदि की धुरी में चक्कर काटता, वहीं ज्योति घर में कामकाज, सास–ससुर की देखभाल में पिसती रहती। अब थकान, छात्र राजनीति या कॉलेज के विभागों की उबाऊ बातें ही बिस्तर पर होतीं। मितभाषी ज्योति को मुझे सुनते रहने की आदत हो चुकी थी, इसलिए हमारे दरम्यान फैलते सन्नाटे को वह बड़ी सिद्दत से महसूस कर रही थी। रात प्रेम के करवटों में स्वाह होती या फिर वासना अपनी भूख मिटाने के लिए प्रेम को निगलती प्रतीत होती। ज्योति का वह लौकिक भोलापन, माधुर्य, निसर्ग उच्छवास–हाथोंहाथ लूट गये। उस फूलदान के फूल की विमल कांति लौकिक चमन की मायावी मनोहारिता में परिणत हो गई। अब आँखें उठाकर आकाश के नीरव बातचीत करने का अवसर कहाँ से मिले?कहाँ प्रकृति की विशाल गोद, कहाँ जगत् का जटिल बंधन–पाश। कहाँ से कहाँ आ गई ज्योति।

एक दिन मैं अपने मित्र की शादी में शामिल होने गया। भव्य होटल में शादी समारोह का आयोजन था। होटल में बार–बालाओं का नृत्य चल रहा था। मैं बड़े मगन से एक नर्त्तकी का नृत्य देख रहा था। उससे आँखें मिलीं, मिलीं क्या लीन हो गयीं। नवीन यौवन, कोकिल कंठा, चतुर चंचल चेष्टा तथा मायावी चमक अब चित्त को चलाने के लिए और क्या चाहिए। नर्तकी सिर्फ नाचनेवाली नहीं, नचानेवाली भी थी। पहली बार देखकर उसे इस लोक की सुंदरी समझना अस्वाभाविक नहीं था। एक लपट जो लगती–किसी नशा–सी चढ़ जाती। आँखें मिलती– मिलती मिल गयीं, हृदय को भी साथ–साथ घसीट ले गई।

फिर क्या था, मैं प्रायः रोज ही उसके कोठे पर जाने लगा। बाप–दादों की कुल प्रतिष्ठा, शिक्षा, लोक–लाज, पत्नी से पवित्र प्रेम एक–एक करके उस प्रदीप्त वासना कुंड में भस्म होने लगे। अग्नि और बढ़ती गयी। मैं निरंतर जलने लगा, लेकिन ज्यों–ज्यों जलता गया, जलने की इच्छा जलाती रही।

तीन महीने कट गये, नशा उतरा नहीं। सिल्क की कीमती साड़ी, मोती का हार, तरह–तरह के गहने सब कुछ लाकर उस मायावी के चरणों पर रखे। ज्योति मेरी मालती बनी थी, जिसपर एक फूल नहीं, एक पल्लव नहीं। घर की वधू क्या करती?जो अनंत सूत्र से बँधा था, जो अनंत जीवन का संगी था, वही हाथों–हाथ पराये के हाथ बिक गया। दिनभर बहानों की माला गूँथ–गूँथकर ज्योति के गले में और शाम को मोती की माला उस नाचनेवाली के गले में सशंक निर्लज्ज डाल देना–यही मेरा जीवन रह गया था।

एक दिन सारी बातें खुल गयीं, ज्योति पछाड़ खाकर भूमि पर जा पड़ी। उसकी आँखों में आँसू न थे, मेरी आँखों में दया न थी।

शाम से ही काफी जोरों की बारिश हो रही थी। बादल ऐसे गरज रहे थे, जैसे आज कहीं कुछ अनहोनी घटित होनी है, कहीं तो प्रलय आनी है। ज्योति जब कुछ संयत हुई तो उसने कहा, ''वाह दिवाकर! जो औरत मर्यादा की सीमाएँ चंद सिक्कों और अपने शारीरिक भोग के लिए लाँघती जाती है, तुम गुलाम बन उसके पीछे–पीछे घूम रहे हो...। परिवार के प्रति अपने दायित्वों का तुम्हें बिल्कुल ख्याल नहीं है।''

''किसी की जिंदगी में दखल देने का तुम्हें हक नहीं। तुम बात को बढ़ा रही हो।'' क्रोधित भरे स्वर में मैंने कहा।

''हाँ, किसी की जिंदगी में दखलंदाजी करने का हमें कोई हक नहीं, मगर तुमसे तो मेरी जिंदगी जुड़ी है न!''

''हाँ, जुड़ी है तो क्या मैं जीना छोड़ दूँ?क्या तुम मेरी जिंदगी, मेरे ख्वाब, मेरे रिश्ते...सब पर अपना कब्जा कर लेना चाहती हो?'' मैंने चिढ़ते हुए कहा।

''अगर जायज–नाजायज कुछ नहीं होता तो फिर सारे नियम और बंधन हटा देने चाहिए हमें समाज से और उसके बाद जिसकी मर्जी वैसे ही जीने का बराबर का अधिकार मिल जाना चाहिए।''

''हाँ, ठीक है, ले लो बराबरी का अधिकार। मैं अपने सुकून के लिए जाता हूँ, तुम भी कहीं चली जाओ, मैं नहीं रोकूँगा।'' तमतमाते हुए मैंने उससे कहा। ज्योति बिल्कुल स्तब्ध।

रात हो चली थी। रिमझिम बूँदों की झड़ी थी। चाँदनी मेघों से आँख–मिचौनी खेल रही थी। काले बादल के बीच से बिजली बार–बार झाँकती थी। मैं उस नर्त्तकी के कोठे से हताश लौटा था। अपने स्वर्ग के दरवाजे पर सर रखकर निराश लौटा था–ओह, मेरी वेदना!

हाय! मेरी अंगुलियों में एक अँगूठी भी रहती, तो उसे नजर कर उसके चरण पर लोटता।

घर सन्नाटा से भरा हुआ। कोई आवाज नहीं। मेरे सर के ऊपर से एक काला बादल चीत्कार के साथ चिल्ला उठा। मैं तत्क्षण ज्योति के कमरे में जाकर सब आलमीरा झाँके, जो कुछ मिला फेंक डाला, लेकिन मिला कुछ नहीं। आलमीरा में मकड़े का जाल था। शृंगार बक्स में एक छिपकली बैठी थी। उसी क्षण ज्योति पर झपटा। पास जाते ही सहम गया। वह एक तकिये के सहारे निःसहाय निस्पन्द लेटी थी, केवल चाँद ने खिड़की से होकर उसे गोद में ले रखा था। मुख पर एक अपरूप छटा थी। पता नहीं, कहीं जीवन की शेष रश्मि क्षणभर वहीं अटकी हो। आँखों में एक जीवन ज्योति थी। शायद प्राण शरीर से निकलकर किसी आसरे में वहाँ पैठ रखा था। मैं पुकार उठा–''ज्योति! तुम्हारे पास कोई गहना बच रहा है?''

''हाँ, क्षीण कंठ से बोली वह।

''कहाँ है, अभी देखने दो।''

उसने धीरे से घूँघट सरकाकर कहा–''बस, वही मंगलसूत्र।'' और उसका सर तकिये से लुढ़क गया, आँख भी झिप गयीं। अब उसकी जुबान ही नहीं, आँखें भी शब्दों से रिक्त थी। वह जीवन रेखा कहाँ चली गई, क्या इतने ही के लिए अबतक ठहरी थी?मुझपर चढ़ा नशा उतर गया। इस वक्त मैं पार्थिव उपस्थिति की सच्चाई और उस सच्चाई पर यकीन करने से इन्कार के बीच की जगह खड़ा था। सारी बातें सूझ गयीं, आँखों पर की पट्टी खुल पड़ी, लेकिन हाय! खुली भी तो उस समय, जब जीवन में केवल अंधकार ही रह गया।

मेरी स्मृति तड़ित वेग से नाच उठी।

कहानी

निजात

हरिप्रकाश राठी
कमलानेहरू नगर प्रथम विस्तार
जोधपुर (राजस्थान)

दस दिन पूर्व पाँव में मोच आई तो मुझे फिर खाट पकड़नी पड़ी। मॉर्निंग वॉक से लौटते समय जाने कैसे पाँव गड्ढे में पड़ गया। दो माह पूर्व कोहनी उतरी तो पन्द्रह रोज पटट्टा बँधा था। उसके पहले भी जाने कितनी बार भुगतना पड़ा है। सात वर्ष पूर्व पाँव की हड्डी टूटी, तब तीन माह खाट में पड़ा था। तब तो सुमित्रा थी, बेचारी ने बहुत सेवा की, पर अब तो बेटे–बहू ऐसे देखते हैं मानो बार–बार पूछ रहे हों, ''देखकर नहीं चल सकते क्या?मम्मी जब से ऊपर गई है, ऊपर ही देखते रहते हो!''

ये बला जाने कैसे आ गई?ऊपर से बैरी बुढ़ापा। वाकई जीने का समय तो मात्र जवानी है। यौवन सर्वत्र सुरभि बिखेरता एक पल्लवित वृक्ष है; लेकिन बुढ़ापा ऐसा ठूँठ है, जो पल–पल गिरने का इंतजार करता है। जिस अवस्था में शरीर ही साथ न दे, तो और कौन देगा।

साँझ से घर में अकेला पड़ा हूँ। बेटा–बहू नौकरी कर आठ बजे तक आते हैं। लेटे–लेटे अपनी दुर्भाग्य को कोस रहा हूँ। कुछ पल आँखें मूँदी तो जाने किस लोक में चला गया। आँखें खोली तो सामने एक आकृति देखकर हैरान रह गया। काली छाया–सी यह आकृति मुझे स्पष्ट तो नहीं दिखाई दी, पर निश्चय ही कोई तो था?मैंने चीखकर पूछा–'तुम कौन हो?'

पहले तो उसने इधर–उधर छुपने का प्रयास किया, फिर जाने क्या सोचकर सम्मुख होकर बोला, ''मैं दुःख हूँ। तुम्हारी याद आई, अतः पुनः तुम्हारे समीप चला आया।'' उसकी तेज आवाज से कमरा गूँज उठा।

''तुम फिर चले आए?तुम्हें क्या मैं ही दीखता हूँ?कितनी बार मैंने तुम्हें मार–मार कर भगाया, पर तुम हो कि हर बार पतली गली से चले आते हो! समय–असमय कुछ नहीं देखते। इतना उपहास, धिक्कार एवं दुत्कार मिलने पर भी कोई क्या किसी के यहाँ पुनः आता है?इतना ही नहीं, तुम आकर छाती की तरह चिपक जाती हो। दुनिया में और भी तो है?'' बिना साँस रोके मैं बोलता गया।

''आप तो खामख्वाह नाराज हो गये। मैं तो सर्वत्र समान रूप से विचरता हूँ। आप जैसे विद्वान् तो फिर भी मेरे प्रभाव को दर्शन, चिंतन और अध्यात्म के बल से क्षीण कर देते हैं। अन्यत्र तो मेरे प्रवेश करते ही त्राहिमाम् हो जाता है। खैर! अब कोसो मत, आया हूँ तो कुछ समय तो रहूँगा।''

''अरे! तू गया कब था?मुझे तो संपूर्ण जीवन–यात्रा में दायें–बायें नजर आया। बचपन में माँ चल बसी, कुछ बड़ा हुआ तो पिता चले गये। उसके बाद नौकरी प्राप्त करने में कितनी मशक्कत हुई। विवाह कौन–सा आराम से हो गया?अनाथ को कोई लड़की देता है क्या?वो तो भला हो सुमित्रा के पिता का, जिन्हें मुझपर दया आ गई। वह थी तबतक तुझसे लड़ भी लेता था; लेकिन तेरी कृपा से वह भी पाँच साल पहले स्वर्ग सिधार गई। अब तो निपट अकेला हूँ। तुझे क्या पता है, पत्नी के साथ तेरा प्रभाव आधा एवं उसके बिना दस गुना हो जाता है। बेटे–बहू सेवा करते हुए ऐसे देखते हैं, जैसे कह रहे हों–''अब और कितना जिओगे?मम्मी ऊपर अकेली है, आप भी चले क्यों नहीं जाते।''

''आप तो लट्ठ लेकर पीछे पड़ गए। ऐसे कह रहे हों, जैसे मेरा भाई सुख कभी आपके यहाँ आया ही नहीं।''

''उसका आना तुझे कब सुहाया दुर्मुख। वह तो घड़ी भर सावन की फुहार की तरह कभी–कभी आता था। उसे तूने टिकने कब दिया?उसके साथ क्षणभर साँस लेता, उसके पहले तो तू आ जाता। इतना ही नहीं, जब भी आता, पसरकर बैठ जाता। मुझे तो लगता है तेरी सुख से साँठ–गाँठ है। घड़ी भर उसको भेजकर तूँ हरी–हरी चरवाता है, फिर हाथ में कटोर लिये ऐसे आता है, जैसे बकरा काटने कसाई!''

''इतना भी नाराज क्यों होते हो?माना कि मैं जीवनभर आपके इर्द–गिर्द रहा; लेकिन क्षणभर ठंढे दिमाग से सोचकर देखो कि अगर मैं न होता, तो क्या आप इतना संघर्ष करते?मैं न होता तो क्या आपके भीतर आस्था का प्रादुर्भाव होता?क्या आप प्रभु को तहे दिल से पुकार पाते?क्या आपके अनुभव इतने विलक्षण होते?मुझे इतना न कोसो! चिंतन की मथनी में मथकर मैंने आपके कितने विकारों को बाहर किया। मैं न होता तो आप घमंडी, आततायी एवं दुराचारी बन जाते। यह मेरा ही अंकुश का भय था, जिससे सहमे आप सदैव सत्पथ पर रहे। मेरी वजह से ही आपमें गांभीर्य का प्रादुर्भाव हुआ। मेरे कारण ही आपमें युक्तियुक्त बोलने की कला आई, आपके कर्मबंधनों का विमोचन हुआ। मेरी वजह से ही आपकी आत्मा उच्चतर सोपानों पर चढ़ी। मैंने ही विटामिन की तरह आपकी आत्मा का पोषण किया। मैं न होता तो इस भौमनरक से आत्मोत्सर्ग की दुर्लभ यात्रा आपको कौन करवाता?मेरे त्याग का सिला आप यूँ धिक्कार से दे रहे हैं?''

उसके गूढ़ वचन सुनकर क्षणभर के लिए मैं सहम गया। वह और कुपित न हो जाए, अतः ठंढे होकर प्रश्न किया, ''यह भौमनरक क्या है भाई?''

''भौमनरक यानी यह पृथ्वी, भूलोक नरक है। यहाँ वे आत्माएँ ही गिरती हैं, जिनके पुण्य क्षीण हो गये हों। भाँति–भाँति की यातनाएँ देकर मैं ही उनके पापों को काटता हूँ। मेरे बिना कोई भी पुण्यरथ पर चढ़ ही नहीं सकता।''

उसकी बात पूरी भी न हुई थी कि मेरे पाँव में पुनः दर्द हुआ। शायद बातों–बातों से एक पाँव पर दूसरा पाँव आ गया। दर्द से कराहते हुए मैंने उसे पुनः आड़े हाथों लिया, ''अब बस कर! ज्यादा ज्ञान मत बघार! कुछ बताना ही चाहता है, तो सिर्फ यह बता कि तुमसे निजात कैसे संभव है?''

मेरी बात सुनकर उसने पहले तो अट्टहास किया, फिर रुककर बोला–''मुझसे निजात तो तुम्हें मेरी माँ ही दिला सकती है। तुम हो तो उसे बुलाऊँ?''

''हाँ–हाँ, तुरंत बुलाओ।'' मैं अधीर होकर बोला।

तभी एक और काली आकृति कमरे में प्रविष्ट हुई। वह दुःख की काली आकृति से कई गुना विकराल और भयानक थी। उसे देखते ही दुःख ने चरणस्पर्श किया, तो उसने कंधों से पकड़कर उसे प्रेमपूर्वक उठाया, उसका माथा सूँघा, फिर आशिष देते हुए बोली–''पुत्र! अपनी माँ के लिए तुमसे अधिक त्याग करनेवाला कोई पैदा नहीं हुआ। तभी तो मैंने तुम्हें चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया है। जाओ, तुम अजर रहोगे, अमर रहोगे।''

मातृ आशीर्वाद से उपकृत दुःख मुस्कुराता हुआ कमरे से निकल गया। लेकिन मेरी गति तो साँप–छछूंदर वाली थी। एक आकृति ने छोड़ा तो दूसरी सामने आ गयी। मैं विह्वल होकर बोला, ''अब तुम कौन हो?''

''मृत्यु!'' इतना कहकर उसने मुझे अपने आगोश में ले लिया।

कहानी

देवयानी

ए.के. सिन्हा
एल एन गार्डेन
कपीजगा राजीपेटा विशाखपत्तनम (ए.पी.)
मो. 6302198456

देवयानी असुरों (राक्षसों) के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री थी। यद्यपि गुरु शुक्राचार्य देवजाति के थे और महर्षि भृगु के पुत्र थे, लेकिन 'देव' लोगों से उचित सम्मान न पाने के कारण वे दानवों के राज्य में जा बसे थे और दानवों के गुरु बन गये थे। उस समय में वे एकमात्र व्यक्ति थे, जिन्हें 'मृत संजीवनी' विद्या मालूम थी, जिसके द्वारा वे मृत व्यक्ति को जीवित कर देते थे। यह विद्या उन्हें भगवान शंकर ने दी थी। उस समय देवों और दानवों में युद्ध हुआ करते थे, जिसमें काफी संहार हुआ करता था। लेकिन गुरु शुक्राचार्य दानवों को मृतसंजीवनी विद्या द्वारा जीवित कर देते थे, जिससे उन लोगों की शक्ति कम नहीं होती थी और वे फिर देवताओं पर आक्रमण कर देते थे।

इससे देवता काफी चिंतित थे और उन्होंने भी मृत संजीवनी मंत्र (। ीलउद वित तमअपअपदह जीम कमंक) सीखने के लिए देवताओं के गुरु आचार्य बृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के आश्रम भेजने की योजना बनाई। आचार्य बृहस्पति महर्षि अंगिरा के पुत्र थे। शुक्राचार्य ने महर्षि अंगिरा के आश्रम में ही रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। इसलिए गुरु शुक्राचार्य और आचार्य बृहस्पति दोनों गुरुभाई थे।

इसलिए आचार्य बृहस्पति ने देवताओं की रक्षा के लिए अपने पुत्र कच को दाँव पर लगाने का निश्चय किया और संजीवनी मंत्र सीखने के लिए गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में भेज दिया। शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी काफी सुंदर थी। उस समय 'देवयानी' और 'कच' दोनों ही युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे, इसलिए सहज आकर्षण जल्द ही प्रेम में बदल गया।

इससे दानव बहुत ही क्रोधित हुए और 'कच' को मारने का प्रयत्न करने लगे। लेकिर हर बार जब वे कच की हत्या कर देते थे, देवयानी के रोने के कारण गुरु शुक्राचार्य उसे जीवित कर देते थे। इसे देखकर दानव बहुत ही क्रोधित हुए और एक योजना बनाई। उन्होंने कच की हत्या कर शव को एक चिता पर रखकर जला दिया और उसकी राख में अस्थियों का बारीक चूर्ण बनाकर उसे मंदिर (शराब) में मिलाकर गुरु शुक्राचार्य को पिला दिया। जब देवयानी के रोने पर शुक्राचार्य ने संजीवनी मंत्र का उच्चारण कर कच को जीवित करने का प्रयत्न किया, तो उन्होंने महसूस किया कि कच तो जीवित होकर उनके पेट में है और आवाज दे रहा है। अब उनके सामने और कोई रास्ता न रहा कि वे कच को मृत संजीवनी मंत्र सिखायें। मृत संजीवनी विद्या सीखकर कच उनका पेट फाड़कर जीवित प्रकट हुआ। फिर कच ने मृत संजीवनी विद्या द्वारा गुरु शुक्राचार्य को जीवित कर दिया।

शिक्षा पूर्ण होने के बाद कच ने गुरु शुक्राचार्य से देवलोक जाने की आज्ञा माँगी। गुरु शुक्राचार्य ने उसे देवलोक जाने की आज्ञा दे दी। देवयानी ने कच को अपने साथ विवाह करने और देवलोक ले चलने के लिए कहा। लेकिन कच ने यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि एक तो वह गुरुपुत्री है और दूसरा यह कि वे दोनों अब भाई–बहन हैं; क्योंकि वह उसी गुरु शुक्राचार्य के पेट से जीवित होकर बाहर निकला है, जिसकी पुत्री देवयानी है। अतः वे दोनों भाई–बहन हैं और एक दूसरे से विवाह नहीं कर सकते। यह सुनकर देवयानी ने उसे शाप दिया कि वह मृत संजीवनी विद्या का प्रयोग नहीं कर सकेगा। इसपर कच ने कहा कि यद्यपि वह स्वयं इस विद्या का प्रयोग नहीं कर सकेगा, लेकिन किसी दूसरे को सिखा तो सकता है, ताकि यह मंत्र देवताओं के काम आ सके। इसके बाद कच ने उसे शाप दिया कि वह भी किसी देव जाति के व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकेगा। तत्पश्चात् कच देवलोक चला गया और देवयानी टूटे दिल के साथ आश्रम और पास के जंगलों में भटकने लगी।

इस घटना को दो–तीन वर्ष हो चुके थे। धीरे–धीरे देवयानी सामान्य जीवन में वापस आ गई। गुरु शुक्राचार्य की पुत्री होने के कारण उसे काफी सम्मान मिलता था। उस समय देवताओं का राजा वृषपर्वा था। उसे एक ही लड़की थी, जिसका नाम शर्मिष्ठा था। शर्मिष्ठा और देवयानी में एक वय होने के कारण गहरी मित्रता थी। वे दोनों राजभवन की लड़कियों के साथ आमोद–प्रमोद किया करती थीं। एक दिन दोनों अन्य सहेलियों के साथ नदी के किनारे घूमने के लिए गयीं और वहीं क्रीड़ारत (खेल–कूद) हो गयीं। फिर वे अपने कपड़े उतार नदी में नहाने लगीं और कपड़ों को एक जगह इकट्ठा कर रख दिया। उसी समय इंद्रदेव वहाँ से गुजरे, जिससे तेज हवाएँ चलने लगीं और कपड़े इधर–उधर बिखर गये। इसी अफरा–तफरी में देवयानी ने शर्मिष्ठा के और शर्मिष्ठा ने देवयानी के कपड़े पहन लिये। यह देखकर देवयानी बहुत ही क्रोधित हुई। उसे अपने देव जाति का बहुत अभिमान था। शर्मिष्ठा दानव जाति की थी। यद्यपि वह राजकुमारी थी और देवयानी के पिता शुक्राचार्य उसके पिता दानवराज वृषपर्वा के दरबारी थे। फिर भी दानव जाति की होने के कारण वह देवयानी का बहुत सम्मान करती थी और शर्मिष्ठा से बोली कि देखो तो तुमने दानव जाति का होने के बाद भी देव जाति की लड़की के कपड़े पहने लिया है और मलिन एवं अपवित्र कर दिया है कपड़ों को। पहले तो शर्मिष्ठा उसकी बातों को चुपचाप सुनती रही। लेकिन आखिरकार वह थी तो दानव जाति की, देवयानी की तिरस्कार भरी बातें सुनकर उसके खून में उनाव आ गया और उसने भी देवयानी को दुर्वचन कहना प्रारंभ किया। दोनों काफी झगड़ने लगी और फिर शर्मिष्ठा ने देवयानी के कपड़े छीन लिये और अन्य लड़कियों के साथ मिलकर देवयानी को एक कुएँ में ढलेक दिया। देवयानी को कुएँ में ढकेलकर शर्मिष्ठा राजमहल चली आई। उधर राजा ययाति शिकार खेलने के लिए जंगल में गये थे और अपने साथियों से बिछड़ गये थे। वहाँ उन्हें बहुत प्यास लगी। पानी की खोज में उसी कुएँ पर पहुँच गये, जहाँ देवयानी निर्वस्त्र खड़ी थी और जोर–जोर से रो रही थी। राजा ययाति को बहुत आश्चर्य हुआ और वे सोचने लगे कि कहीं यह भूतों की माया तो नहीं। फिर कुछ सोचकर उन्होंने निर्वस्त्र देवयानी को पहनने को अपना शॉल दिया और उसका हाथ पकड़कर कुएँ से बाहर निकाल दिया। तब अपना हाथ पकड़कर बाहर निकालनेवाला राजा ययाति को देवयानी ने धन्यवाद दिया और कहा कि नारी जीवन में एक ही पुरुष का हाथ पकड़ती है, इसलिए वह राजा ययाति से शादी करने को कहती है। वैसे तो देवयानी देव (ब्राह्मण) जाति की थी और राजा ययाति क्षत्रिय जाति के। राजा ययाति ने देवयानी की बातों को शास्त्र के विरुद्ध और अप्रिय जानकर भी स्वीकार कर लिया। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि वे उसके पिता शुक्राचार्य की अनुमति के बिना देवयानी से विवाह नहीं करेंगे।

यह कहकर राजा ययाति चले गये। फिर देवयानी रोती हुई पिता के पास आई और शर्मिष्ठा का सब हाल कह सुनाया। शुक्राचार्य पुत्री की दुर्दशा पर बड़े दुखी हुए और देवयानी के साथ लेकर दैत्यराज वृषपर्वा के नगर से निकलकर चल दिये। जब यह समाचार वृषपर्वा ने सुना तो कहीं शत्रुओं से मिलकर गुरुजी उसकी विजय न करा दें, ऐसा विचारकर वह गुरु के सामने दौड़कर आया और मस्तक नवाकर गुरु के पैरों पर गिर पड़ा। गुरु शुक्राचार्य का ऐसा स्वभाव था कि वे ज्यादा देर क्रोधित नहीं रह सकते थे। इसलिए उन्होंने वृषपर्वा से कहा कि वह देवयानी को मना ले उसकी का निर्णय अंतिम। वृषपर्वा इसके लिए तैयार हो गया। इसपर देवयानी ने कहा कि मैं पिता की आज्ञा से जिस पति के घर जाऊँ वहाँ शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों के साथ मेरी दासी बनकर रहे।

इधर शर्मिष्ठा ने विचारा कि यदि शुक्राचार्य चले गये, तो पिता को

बहुत दुःख और संकट होगा और इधर देवयानी को प्रसन्न करने से पिता का बड़ा भारी काम सिद्ध होगा। यह सोचकर शर्मिष्ठा ने देवयानी का कहना मान लिया। तब शुक्राचार्य ने देवयानी का विवाह राजा ययाति से कर दिया और शर्मिष्ठा को अन्य दासियों के साथ ययाति के राजमहल में भेज दिया। शुक्राचार्य ने देवयानी को विदा करते हुए राजा ययाति से कहा कि देवयानी को कभी दुख न देना और शर्मिष्ठा की सेज पर कभी नहीं सोना। अन्यथा परिणाम बहुत बुरा होगा। ययाति ने उन्हें ऐसा न करने का वचन दिया।

शर्मिष्ठा को साथ लाना देवयानी की बहुत बड़ी भूल थी। आखिर को शर्मिष्ठा राजकुमारी थी और रूप सौंदर्य में किसी तरह देवयानी से कम न थी। दानव जाति का होने के कारण उसका रंग काला था। कुछ दिनों तक राजा ययाति देवयानी के रूप–सौंदर्य पर मुग्ध रहा। लेकिन आखिर वह चंद्रवंशी राजा था, जिनके लिए अनाचार एक सामान्य बात थी। धीरे–धीरे ययाति की निगाहें भटकने लगीं और उसे शुक्राचार्य को दिया हुआ वचन भी विस्मृत हो गया। फिर एक दिन जब उसकी निगाहें शर्मिष्ठा पर पड़ी तो उसे वह देखता ही रह गया और होता भी क्यों न, वह भी तो आखिरकार राजकुमारी थी। उसने शर्मिष्ठा को अपने जाल में फँसा लिया और महल से दूर जंगल में उसके रहने के लिए एक भवन बना दिया। उसने महल के नीचे से जंगल में स्थित भवन तक एक गुप्त सुरंग बना दिया, जिसके द्वारा शर्मिष्ठा देवयानी की नजरें बचाकर रात को चली जाती थी और दिन में फिर महल में चली आती थीं; क्योंकि उसे दिन में देवयानी के पास रहकर सेवा–कार्य करना पड़ता था। राजा ययाति की काम वासना इससे भी शांत नहीं हुई और उसने देवयानी की तीन चार दासियों के लिए ऐसी ही व्यवस्था कर दी थी। सभी एक दूसरे के इस रहस्य से अनजान थे। चंद्रवंशी राजा ययाति की काम–पिपासा शांत होने के बजाय बढ़ती ही जा रही थी।

इसी तरह बहुत वर्ष बीत गये और देवयानी, शर्मिष्ठा और अन्य दासियों को संतान उत्पन्न हुए। देवयानी से दो पुत्र– यदु और तुर्वसु। शर्मिष्ठा से द्रुह और अनु और एक दासी से पुरु नाम के पुत्र हुए, जो समय के साथ युवा हो गये और उनका भी विवाह भी होने लगा। सभी एक दूसरे के इस रहस्य से अनजान और एक दूसरे के लिए अजनबी थे। इसी तरह बहुत वर्ष बीत गये।

एक दिन जब देवयानी और ययाति भ्रमण कर आ रहे थे, तब उनके रथ का एक पहिया कीचड़ में फँस गया। राजा रथ का पहिया निकालने के लिए सारथी की सहायता करने के लिए रथ से उतर गये। देवयानी भी रथ से उतर गयी। कीचड़ काफी गहरा था। राजा ययाति सारथी के साथ रथ निकालने का प्रयत्न कर रहे थे; लेकिन दलदली जमीन होने के कारण रथ का पहिया और नीचे धँसता जा रहा था। मदद के लिए जब देवयानी ने इधर–उधर नजरें दौड़ाई, तो उसे तीन नवयुवक समिधा की सामग्री लेकर आते दिखाई पड़े। वे नवयुवक काफी भव्य एवं रूपवान और उत्तम कुलवाले दिखाई दे रहे थे। देवयानी उन्हें देखकर आश्चर्य चकित रह गई। उसने उन युवकों को रोककर उनका परिचय और पिता का नाम पूछा। इसपर उन युवकों ने राजा ययाति की ओर संकेत किया। देवयानी को गहरा धक्का लगा।

राजा ययाति के इस कार्य को देवयानी सहन न कर सकी और रोते और विलाप करते हुए अपने पिता शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँची। राजा ययाति भी उसके पीछे–पीछे चले। मार्ग में राजा ययाति देवयानी के पाँव छू और अनेक प्रार्थना कर भी उसे मना न सके। देवयानी ने आश्रम पहुँचकर सारा वृतांत अपने पिता शुक्राचार्य से कह सुनाया। तब पुत्री की बात सुन शुक्राचार्य क्रोधवश ययाति से बोले–अरे लोलुप, लंपट, मंद! तुझे मनुष्यों को कुरूप बना देनेवाला बुढ़ापा घेर ले। इतना कहकर शुक्राचार्य ने मंत्र पढ़ दिया और कहा कि रात्रि के प्रारंभ होते ही तुझे बुढ़ापा घेर लेगा। वही बुढ़ापा जो जीवन का अंतिम चरण है। रात्रि होते ही तू पूर्ण वृद्धावस्था को प्राप्त कर लेगा। लेकिन ययाति निर्लज जैसे वचन बोलने लगा–'हे गुरुदेव! तुम्हारी बेटी के साथ विषय भोगकर अभी मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ। इसी कारण तुम्हारे शाप से मेरी नहीं, वरन् तुम्हारी बेटी को हानि हुई है। वह तो अभी युवावस्था में प्रविष्ट ही हुई है। असली हानि तो देवयानी की ही होगी।

तब शुक्राचार्य को स्थिति का आभास हुआ और कहा कि दिया गया शाप वापस नहीं लिया जा सकता। हाँ, तेरा बुढ़ापा तेरा कोई बेटा ले ले और उसके बदले अपनी जवानी तुझे दे दे तो यों परस्पर बदला करके तू युवावस्था लेकर सुख भोग सकता है।

इतना सुनकर ययाति अपने नगर लौट आए और एलान कर दिया कि जो राजा से वृद्धावस्था बदल लेगा, उसे मुँहमाँगी और बेशुमार दौलत दी जाएगी। लेकिन कोई राजा की वृद्धावस्था लेने को तैयार नहीं हुआ। इसके बाद राजा ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को बुलाकर कहा कि हे पुत्र! तू अपनी युवावस्था मुझे दे दे और बुढ़ापा तू ले ले। हे पुत्र! मैं अभी विषयभोग से तृप्त नहीं हुआ हूँ। अब: तेरी युवावस्था लेकर मैं कुछ और दिन सुख भोग लूँ।

इसपर यदु ने कहा, ''पिताजी! वृद्धावस्था खराब है, इसलिए मैं अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता। क्योंकि जीवन में विषयसुख जाने बिना कोई भी पुरुष उससे अलग नहीं हो सकता। इसलिए जबतक वैराग्य उत्पन्न न हो जाए, तबतक अपनी युवावस्था देना मुझे नहीं भाता है।'' इसपर विवश होकर राजा ययाति ने तुर्वसु और अनु नाम के पुत्रों से अपनी जरावस्था लेने को कहा, परन्तु सबों ने भी ऐसा करने से इन्कार कर दिया।

इसके बाद उसका सबसे छोटा बेटा पुरु आता है, जो एक कीर्तना नामक दासी से उत्पन्न हुआ था। उसे देखकर देवयानी और शर्मिष्ठा दोनों ही अचंभित हो जाती है; क्योंकि उन्हें कीर्तना के अस्तित्व का पता न था। राजा ने प्रचारित कर दिया था कि कीर्तना स्नान करते हुए नदी में डूब गई है। उसे वह महल से दूर एक अन्य भवन में रखता था। विगत रात्रि ही उसकी शादी हुई थी और वह अपनी पत्नी दिव्या के साथ ययाति के वृद्धावस्था की खबर सुनकर महल में आता है। यद्यपि पुरु दासी कीर्तना का पुत्र था और उसे गुमनामी के अंधेरे में रखा गया था; लेकिन वह अपने पिता से बहुत प्यार करता था। विगत रात्रि ही उसकी शादी दिव्या से हुई थी और प्रातःकाल जब उसे ययाति की वृद्धावस्था की बात मालूम हुई तो वह अपनी नई दुल्हन और माँ 'कीर्तना' के साथ राजमहल में आ गया।

शर्मिष्ठा ययाति से कहती है कि कोई वृद्धावस्था से बच नहीं सकता और आपको वृद्धावस्था स्वीकार कर लेनी चाहिए। शर्मिष्ठा ययाति के साथ जंगल जाने को तैयार है। इसपर ययाति कहता है कि वह वाणप्रस्थ जीवन नहीं बर्दाश्त कर सकता। मुझे राज्य, सभासद, मंत्री, रानियाँ और जय–जयकार करती प्रजाजनों की भीड़ चाहिए। मुझे जवानी चाहिए।

पुरु भी ययाति से कहता है कि उसे वृद्धावस्था स्वीकार कर लेनी चाहिए। लेकिन ययाति इसके लिए तैयार नहीं है। वह पुरु से अपनी वृद्धावस्था बदलने को कहता है। अंत में पुरु कहता है कि वह उसकी वृद्धावस्था लेने के लिए तैयार है। शुक्राचार्य देवयानी के साथ यहाँ आते हैं और मंत्र पढ़कर पुरु की युवावस्था को ययाति की वृद्धावस्था से बदल देते हैं।

शुक्राचार्य के मंत्र पढ़ने के बाद ययाति एक नवयुवक के रूप में परिवर्तित हो जाता है और उसका पुत्र पुरु पूर्णरूप से एक अतिवृद्ध में बदल जाता है। इतने में पुरु की पत्नी दिव्या जो अंग देश (वर्तमान मुंगेर) की राजकुमारी है, प्रवेश करती है और अपने पति पुरु की दशा देखकर हतप्रभ हो जाती है। शर्मिष्ठा उसे सारी बात बताती है। सारी बातें सुनकर पुरु की पत्नी दिव्या रोने लगती है और ययाति को धिक्कारती है। दिव्या ययाति को कहती है कि क्या दुनिया में सिर्फ ययाति को ही जीने, सुख पाने और जवान रहने का अधिकार है। इतनी उम्र तो हो गई, लेकिन अभी तक भोग लालसा शांत नहीं हुई। ययाति कुछ कहने का प्रयत्न करता है, लेकिन वह एक नहीं सुनती और दूसरे कमरे में चली जाती है। फिर वह विषपान कर लेती है। दासी आकर सभी लोगों को दिव्या के बारे में बताती है। अब ययाति को अपनी गलती का एहसास होता है और वह पुरु को उसका यौवन लौटा देता है। शुक्राचार्य मृतसंजीवनी विद्या द्वारा दिव्या को जीवित कर देते हैं। फिर राजा ययाति पुरु को राज सिंहासन पर बैठा देता है और स्वयं वनवास जाने के लिए तैयार हो जाता है। शर्मिष्ठा उसके साथ वन को चली जाती है। देवयानी अपने पिता शुक्राचार्य के

कहानी

किरायेदार

अभय कुमार भारती
लोदीपुर, भागलपुर
मो.–9430024285

'किराये के मकान में रहते हो, कायदे से रहो। तुम्हारे बाप का मकान नहीं है, जहाँ तुम्हारी मनमानी चलती रहेगी।'' मकान मालकिन ने विपिन को इस कदर दुत्कारा, मानो वह किरायेदार नहीं, बल्कि घरेलू नौकर हो। विपिन ने सुना तो वह अवाक् रह गया। मुँह से एक बोल तक नहीं फूटे। उसे गुस्सा तो खूब आया, मगर वह कोई बखेड़ा करना नहीं चाहता था। इसलिए वह चुपचाप उसे जब्त कर गया। खून के घूँट पीकर रह गया। मगर वह समझ नहीं पाया कि मकान मालकिन किस बात को लेकर उसपर इतने लाल–पीले हो रही हैं। कुछ पल के लिए तो वह यूँ ही खामोश रहा। मगर उसके मन में संशय के बादल उमड़ते–घूमड़ते रहे। उत्कंठा जोर मारती रही; वह विनम्र होकर बोला–''चाची! हमसे कोई गुस्ताखी हो गयी है क्या?अगर अनजाने में कोई गलती हो गयी हो तो उसके लिए माफी चाहता हूँ। मगर कुछ तो पता होना चहिए।'' विपिन ने उत्सुकता जाहिर की। लेकिन विपिन की बातों का मकान मालकिन पर उल्टा असर हुआ। सुनते ही उबल पड़ी। उसे हिकारत भरी नजर से घूरते हुए कड़े शब्दों में फटकारी–''यह भी वापस लौटने का समय है। पता है कितने बज रहे हैं?लोग सोयेंगे–बैठेंगे कि तुम्हारे लिए दरवाजे पर पहरे देते रहेंगे।''

''लेकिन चाची! अभी तो दस ही बजे हैं। ज्यादा समय नहीं हुआ है। बाजार भी खुला हुआ है। बहुतेरे लोग आ–जा रहे हैं। मेरे ख्याल से तो ज्यादा समय नहीं हुआ है। मगर आप कहती हैं तो''–सहमते हुए विपिन ने जुबान खोली, मगर कहते–कहते वह लड़खड़ा गया। शायद मकान मालकिन की कठोर मुद्रा देखकर वह आगे कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा सका और वाक्य को अधूरा ही छोड़ दिया। इसपर भी मकान मालकिन का गुस्सा कम नहीं रहा। वह बिफरते हुए बोली–''मुझसे बहस मत कर। तू ही जानता है, समय ज्यादा नहीं हुआ है। तेरे लिए तो बारह बजे रात भी कम ही समय होगा। यही न। चूँकि तू यहाँ का लाट साहब जो ठहरा और हमलोग तेरे नौकर–चाकर। सच कहा न।'' मकान मालकिन की कठोर व्यंग्य मुद्रा भाँपकर विपिन पानी–पानी हो गया। फिर भी वह साहस कर अपनी सफाई देने में लगा रहा। वह सहमत हुए बोला–''नहीं चाची! मेरे कहने का मतलब यह नहीं था। मैं तो बस इतना कह रहा था कि...।'' वह अभी अपनी बात पूरी भी नही कर पाया था कि वह पुन: बिफर पड़ी–''मैं अच्छी तरह समझ रही हूँ कि तेरे कहने का क्या मतलब है, लेकिन अपना मतलब अपने पास ही रख। कान खोलकर सुन लो। साफ–साफ कह देती हूँ, अगर तुझे इस घर में रहना है तो तुझे यहाँ के कायदे–कानून को हरहाल में मानना होगा। तुझे नौ बजे तक गेट के अंदर दाखिल होना होगा। अगर यहाँ के कायदे मंजूर नहीं तो अपना बोरिया–बिस्तर समेटो और दफा हो जाओ यहाँ से। कहीं और ठिकाना देख लो। मुझे कोई आपत्ति नहीं।''

विपिन समझ गया कि मकान मालकिन क्या कह रही है और उनकी बात न मानने का नतीजा क्या हो सकता है। इस परदेश में उसे सड़क पर आते देर नहीं लगेगी, जो वह कभी नहीं चाहेगा। आखिर वह परिवारवाला है। बेघर होकर न जाने कहाँ–कहाँ भटकेगा?वह मजबूर है। मजबूरी ने तो न सिर्फ उसके हाथ–पाँव में कथित कायदे का जंजीर डाल दिया, बल्कि उसकी जुबान पर भी ताला लगा दिया था, जो मकान मालकिन के इशारे पर ही खुलता था। वह विवश था।

वह सिर झुकाये चुपचाप मकान मालकिन की कड़वी बातों को सुनता रहा। जब मकान मालकिन का फरमान खत्म हुआ, तब दबी जुबान में विपिन ने इतना कहा–''ठीक है चाची! आगे से ध्यान रखूँगा।'' और वह सिर झुकाये अपने कमरे में आ गया। विपिन रोजगार के सिलसिले में कोलकाता आया था। कोलकाता में उसके ससुराल के कई करीबी रिश्तेदार रहते थे। सो वह सपरिवार चला आया। रिश्तेदार के मकान में बीबी–बच्चों को ठहराकर काम–धंधे के सिलसिले में भागदौड़ करने लगा। महीने भर सड़क की खाक छानता रहा, मगर न तो उसे मनपसंद कोई काम मिला और न ही उसके बजट के बराबर किराये का कोई मकान ही। अपनी पहुँच के मुताबिक उसके रिश्तेदार ने उसे मकान दिलाने का हर संभव प्रयास किया, लेकिन वह प्रयास भी आशा के विपरीत रहा। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। इस उम्मीद के साथ कि देर से ही सही, लेकिन उसे ऐसा काम अवश्य मिल जाएगा, जिससे उसके परिवार का भरण–पोषण हो जाएगा, साथ ही उसे सर छुपाने के लिए छोटा–सा भी आशियाना मिल ही जाएगा। परिणामत: भागदौड़ का सिलसिला जारी रहा। काम मिलता था भी तो मजदूरवाला। लोहा–लक्कड़ उठानेवाला, ट्रक–ट्रॉली पर सामान लादनेवाला। भला जिसने कभी एक पसेरी बोझ नहीं उठाया, वह मन–डेढ़ मन का बोझ कैसे उठा लेता?सो इस तरह का काम करने से उसने साफ इंकार कर दिया। हालाँकि कई कामगारों ने उसे उकसाया भी थर–''अरे! कर ले। काम करोगे, तभी तो काम होगा। इस तरह देह चुराने से तो कुछ नहीं होगा। जरा देह–हाथ भांजकर देख। कैसे काम नहीं होता है।'' सुनकर उसका मन कुछ पल के लिए सुरफुराया भी, लेकिन अगले पल ही उसकी हिम्मत जवाब दे दगी। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाया। इधर किराये का मकान भी मृगमरीचिका साबित हो रहा था। एक तो किराया अधिक तो दूसरा किरायेदार की शिनाख्त इस हद तक की जाती कि हर कोई उस पर खरे नहीं उतर पाता था। मकान लेने के लिए स्थानीय तौर पर एक ऐसे गारंटर का होना जरूरी समझा जाता, जिसे मकान मालिक भली भाँति जानता हो और उसपर उसका भरोसा हो। दूसरा यह कि किराये का भुगतान अग्रिम होने के साथ–साथ पेशगी के तौर पर दस–पंद्रह हजार पहले ले लिया जाता। तब कहीं किराये पर मकान मिलता। विपिन के लिए फिलहाल ऐसी शर्तों को पूरा करना नामुमकिन ना सही, मगर मुश्किल जरूर था। हालाँकि कोलकाता जाते वक्त उसने पाँच–छह हजार अपने पास रख लिये थे। यह सोचकर कि पता नहीं कब जरूरत पड़ जाए। जाते ही तो ठौर मिल नहीं जाएगा। जबतक काम नहीं मिल जाता, तबतक तो यही पैसे काम आयेंगे। आमदनी हो या नहीं हो, पेट तो नहीं मानेगा। रूखा–सूखा जो भी हो, उसे डालकर खुराक तो पूरा करना ही होगा, तभी शरीर का इंजन काम करेगा। बर्ना किसी भी समय उसका भट्ठा बैठ सकता है।''

जबतक विपिन को काम नहीं मिला, तबतक उसने इसी जमा पैसे से अपना काम चलाया। अपने परिवार का भरण–पोषण किया। सो उसके पास कम पैसे रह गये थे। ऐसे में किराये का एडवांस चुकाना उसके लिए टेढ़ी खीर था।

ऐसे में तो वह इस तरह के मकान की तलाश में था, जिसका किराया कम होने के साथ उसका एडवांस भी नहीं लगे। कोई जरूरी नहीं कि मकान पक्का ही हो, कच्चे खपड़ैल मकान में भी गुजारा किया जा सकता है।

काफी भागदौड़ के बाद खपड़ैल का एक छोटा–सा मकान मिला, जिसमें मुश्किल से दो–तीन जनें किसी तरह से देह–हाथ सीधा कर सकते हैं। उसी में रहना और उसी में खाना पकाना। किराया छह सौ रुपया महीना, बिजली बिल के सौ रुपये अलग से। क्या करता, मजबूरी थी, सो उसने हामी भर दी। उसके यहाँ और भी किरायेदार थे। सबका लैट्रिन–बाथरूम एक ही था, जिसका वे बारी–बारी इस्तेमाल करते थे। अन्य मकानों की अपेक्षा इस मकान का किराया कम था, लेकिन उस कमरे के लिए भी एडवांस के तौर पर पाँच

हजार रुपये की माँग की गयी थी। विपिन के पास तो एडवांस के पैसे तो थे नहीं, इसके लिए अपने रिश्तेदारों की गारंटी पर उसने मकान मालिक को भरोसा दिलवाया था कि एक सप्ताह के अंदर वह घर से एडवांस लाकर चुका देगा।

मकान किसी बंगाली महिला के जिम्मे थ। वह करीब साठ–बासठ साल की बुढ़िया थी, मगर काम के मामले में तेज तर्रार। उसके मालिक भी थे, जो किसी फैक्ट्री में ड्यूटी करते थे, लेकिन काम से फुर्सत नहीं मिलने के कारण उसने घर की सारी जिम्मेदारी अपनी पत्नी को सौंप दी थी। सो वह अपने हिसाब से ही मकान लगाती थी और अपने हिसाब से मकान का किराया वसूलती थी।

रिश्तेदार की गारंटी पर मकान मालकिन मान तो गयी, लेकिन इस बात की हिदायत भी दी कि अगर एक सप्ताह के भीतर तक एडवांस नहीं मिला, तो कमरा खाली भी करना पड़ सकता है। उस वक्त विपिन ने मकान मालकिन की आँखों में जो कठोरता देखी तो वह समझ गया कि इसके साथ अधिक दिनों तक पटरी नहीं बिठायी जा सकती है। कभी भी मामला बिगड़ सकता है और उसे घर खाली करना पड़ सकता है। लेकिन वह यह सोचकर चुप हो गया, आगे जो होगा, देखा जाएगा। अभी तो सिर छुपाने के लिए जगह मिल गयी। क्या सब दिन ऐसी ही मुसीबत बनी रहेगी। कभी तो उसके दिन फिरेंगे। हो सकता है शीघ्र ही उसे अच्छी तनख्वाह के साथ अच्छा काम मिल जाए, फिर तो वह एडवांस चुका ही देगा।

किराये का मकान मिलने के बाद उसने रिश्तेदार को तकलीफ देना उचित नहीं समझा और बीबी–बच्चों को साथ लेकर उस किराये की खोली में जैसे–तैसे गुजारा करने लगा। उसकी मेहनत रंग लायी और मकान मिलने के कुछ दिन बाद ही उसे काम मिल गया। काम था सुरक्षा गार्ड का। किसी हाउसिंग कॉम्पलेक्स के गेट पर पहरा देना था। काम खास भारी नहीं था। सिर्फ गेट पर ड्यूटी बजानी थी। सो उसे झटपट स्वीकार कर लिया। तनख्वाह तीन हजार रुपये महीना था। तनख्वाह ज्यादा तो नहीं था, लेकिन इतने में किराया देने के बाद मुश्किल से दाल–रोटी का जुगाड़ हो पाता था। धीरे–धीरे उसकी गाड़ी पटरी पर सरकने लगी थी और उसका मन उम्मीद की उड़ान भरने लगा था। हालाँकि किराये के एडवांस की चिंता अब भी उसके माथे का बोझ बनी हुई थी। उसे इस बात का डर बना हुआ था कि अगर एडवांस नहीं चुकाया तो आगे क्या होगा! अगर मकान मालकिन ने कमरा खाली करने कह दिया तो वह कहाँ जाएगा। कहीं वह सड़क पर तो नहीं आ जाएगा!''

इस चिंता ने उसके दिन का चैन और रात की नींद हराम कर दी थी। हालाँकि उसे इस बात का भरोसा था कि गाँव के पड़ोसी उसकी जरूर मदद करेंगे, जिससे पैसे लाकर मकान मालकिन को एडवांस दे देंगे। आखिर उसी के भरोसे पर तो उसने मकान मालकिन को हामी भरी थी। मकान मालकिन से सप्ताह भर का समय लिया है। अब किस्मत ही धोखा दे दे तो बात अलग है। किस्मत के आगे तो किसी का जोर नहीं चलता है।

अगर किस्मत में सड़क का खाक छानना ही लिखा है तो भोगेगा। इसी चिंता–फिकिर में उसके दिन–रात गुजरने लगे। हर वक्त उसकी आँखों के आगे मकान मालकिन की कठोर मुद्रा घूमती रही। धौंस दिखाती रही। बेचारा सहम कर रह जाता।

अब तो वह नित्य नये पैंतरे बदलने लगी। उसकी एक–एक गतिविधि का मुआयना करने लगी। कहाँ जाता है, क्या करता है, किस–किस से बात करता है?हर एक चीज पर नजर रखने लगी है और जहाँ जरा भी खोट आती, टोके बिना नहीं रहती। अब तो वह मौका तलाशने लगी कि उसमें कोई ऐब दिखे और वह फटकार लगाये। कहीं कुछ नहीं दिखता तो वह छोटी–छोटी बात पर बाल का खाल निकालते उबल पड़ती।

एक दिन विपिन यूँ ही शौचक्रिया से निवृत्त होकर कुएँ पर नहा रहा था। इसी बीच मकान मालकिन आयी और उसे देखते ही बरस पड़ी। आँख नचाते हुए बोली–''टॉयलेट में पानी जरा बढ़िया से डाला करो। गंदगी ऊपर ही रह जाती है।''

विपिन ने सुना तो भौचक्क रह गया।ऐसी गलती तो वह कभी नहीं करता है। वह तो टॉयलेट में इतना पानी डालता है कि गंदगी का नामोनिशान नहीं रहता। फिर उसपर ऐसा आरोप क्यों?किसी की कोई साजिश तो नहीं। उसने मकान मालकिन के सामने सफाई देने की कोशिश की। ''नहीं चाची! आपको गलतफहमी हुई है। मैं तो टॉयलेट हमेशा साफ ही रखता हूँ। जरूरत से ज्यादा ही पानी डालता हूँ। ऐसे में गंदगी रहने का सवाल ही नहीं है।'' फिर वह कहने लगा–''देखिए चाची! टॉयलेट का इस्तेमाल में अकेले नहीं करता हूँ और भी किरायेदार हैं। उनलोगों से भी तो ऐसी गलती हो सकती है। फिर मुझपर ही ऐसा आरोप क्यों?उनलोगों से क्यों नहीं पूछती?''

इतना सुनना था कि मकान मालकिन का पार एकाएक चढ़ गया। वह गुस्से से बिफरते हुए बोली–''बहुत टपर–टपर करते हो। थोड़ी–सी लिफ्ट क्या दे दी, सिर पर ही चढ़ गया। एक तो चोरी ऊपर से सीनाजोरी। समझाने लगी तो बहस पर उतर आया। बड़े पंडित बनते हो। एक मिनट में ही पंडिताई का गुरुर निकल जाएगा। अपनी औकात में रहा करो। ज्यादा हैकड़ी दिखाने की जरूरत नहीं।''

अब विपिन क्या कहता! कौन उसकी बातों पर यकीन करे। उसके पास कोई ऐसा ठोस सबूत था नहीं, जिसे पेश कर वह आरोप के जंजाल से बच निकलता। बेचारा खून का घूँट पीकर रह गया। इसे मालकिन का दुस्साहस कहें या फिर उसके तकदीर का दोष। आये दिन उसे मकान मालकिन की झिड़की सुननी पड़ती।

एक दिन गाँव से उसके दो साथी भटकते–भटकते उसके डेरे पर आ गये। यूँ तो वे यहाँ रहने नहीं आये थे, बल्कि किसी काम से कोलकाता आये थे, सो उससे मिलने चले आये, मगर मकान मालकिन को वह भी रास नहीं आया। घंटे भर तो रहे वे लोग। बस फिर क्या था, उनके जाते ही विपिन पर बरस पड़ी–''मैंने तुम्हें रहने के लिए कमरा दिया था, कोई धर्मशाला नहीं खोल रखा है कि जब चाहो, जिसे चाहो बुला लो और जितनी देर चाहो, बिठा–सुला लो। दोस्त को ही बुलाना हो तो उसके लिए कोई होटल या गेस्ट हाउस देखो। उसे यहाँ बुलाने की जरूरत नहीं है।'' मकान मालकिन ने हाथ नचाते हुए अपना गुमार निकाला। विपिन दम साधकर रह गया। अब तो वह बुढ़िया (मकान मालकिन) सत्तू बाँधकर उसके पीछे लग गयी यानी उसे निकालने पर तुल गयी, बस बहाना चाहिए।

विपिन भी अच्छी तरह समझ रहा था कि मकान मालकिन उसके सथ अन्याय कर रही है। लेकिन वह कर ही क्या सकता?वह मजबूर था। वह तो किरायेदार है। औरों के घर रहना है तो उसके सारे जुल्म–अन्यास सहने होंगे। पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जा सकता। उस मकान में म्युनिसिपलिटी के नल से सप्लाई पानी आता था, जो सुबह और शाम दो–दो घंटे के लिए आता था, लेकिन विपिन ने देखा मकान मालकिन यहाँ भी उसके साथ ज्यादती कर रही है। नल खुला नहीं कि वह घर से सारे बर्तन–बासन और कपड़े–लत्ते लेकर बैठ गयी। कभी एक–एक कर घर के सारे बर्तनों में पानी भरने लगती, तो कभी बर्तन–बासन धोने लगती और कभी कपड़े–लत्ते साफ करने लग जाती। ऐसे में विपिन कब और कैसे पानी भरता?उसके रहते तो विपिन नल पर नहीं जा सकता। मगर वह इंतजार भी करे तो कबतक?एक दो बार तो उसके रहते विपिन नल पर गया भी। निवेदन भी किया–''चाची! एक बाल्टी पानी भर लेने दो। फिर अपना काम करते रहना, किन्तु उसने विपिन की जरूरतों की परवाह किये बगैर उसे बेरहमी से झिड़क दिया–दूर ही रहो। पहले मुझे सारे काम कर लेने दो। फिर बाल्टी भरते रहना। मैं तेरे आसे में बैठी नहीं रहूँगी। मुझे और भी काम है। विपिन सहम कर पीछे हट गया। फिर तो उसने दोबारा हिम्मत नहीं की। मकान मालकिन का यह रवैया काफी दिनों तक चलता रहा। विपिन तो उसके इस रवैये से आजिज हो चुका था।

एडवांस चुकाने की समय–सीमा तो कब की गुजर चुकी थी। गनीमत

थी कि अभी उसे घर से निकाला नहीं गया था, झिड़की देकर ही रह गयी थी। लेकिन यह मोहलत उसे कबतक मिल सकता है। बिना एडवांस लिये तो वह मानेगी नहीं। मगर अबतक एडवांस का इंतजाम नहीं हो पाया था। जिस पड़ोसी के बल पर उसने मनसूबा बाँधा था, वह भी एन वक्त पर इन्कार कर गया। हालाँकि विपिन ने उससे काफी आरजू–मिन्नत की थी। अपनी मुसीबत बताकर उसके खूब हाथ–पाँव जोड़े थे। मगर कोई फायदा नहीं हुआ। पंद्रह दिन हो गये थे। मगर कोई व्यवस्था नहीं हो पायी थी। न जाने अब क्या होगा?अगर वह बुढ़िया अपनी जिद पर अड़ गयी तो फिर भगवान ही उसका मालिक है।

मन में अज्ञात भय के घर कर जाने के साथ तरह–तरह की आशंका भी उसके मन–मस्तिष्क में हावी होने लगी थी। इस चिंता–फिकिर में बेचारा रात–दिन घुलता रहा। अब तो कोई और उपाय भी नहीं सूझ रहा था, जहाँ से उसे पैसे मिल सकते थे। अपने उस रिश्तेदार को भी उसने अपनी परेशानी बतायी, जिसने उसे यह मकान दिलाया था, मगर उसने भी हाथ जोड़ लिये। उसने अपनी तंगहाली को इस कदर बयां किया कि आगे कुछ कहने की विपिन को हिम्मत नहीं हुई। कुछ कहते हुए भी उसे झिझक हो रही थी। अभी तो उसे काम पकड़े महीने भी नहीं लगे थे। तनख्वाह की उम्मीद भी क्या की जा सकती है। और इस नये अनजान शहर में में एडवांस तनख्वाह या फिर किसी भी मदद की अपेक्षा क्या की जा सकती है?जब अपनों ने ही मुँह मोड़ लिया तो फिर गैरों से किस हद तक वह उम्मीद कर सकता है?

आखिर में वह यह सोचने को मजबूर हो गया कि मकान मालकिन अब चाहे जो फैसला सुनाये, चुपचाप उसे मंजूर कर लेगा और वह उसके फैसले का इंतजार करने लगा। आखिर वह दिन आ ही गया, जिसका उसे डर था। एक दिन सुबह–सुबह ही मकान मालकिन आ धमकी। विपिन उस समय ड्यूटी के लिए निकल ही रहा था। आते ही बुढ़िया ने टोक दिया–''एडवांस कब दे रहे हो?'' एडवांस का नाम सुनते ही विपिन सकपका गया। एकबारगी उसका तन बदन सिहर उठा। नतीजतन जाड़े के मौसम में भी उसके बदन में पसीने छूटने लगे थे। जुबान लड़खड़ाकर रह गयी। क्या जवाब देगा वह?

उसका दिमाग ही चकरा गया। आवाज निकालनी चाही, मगर वह भी तालू से चिपककर रह गयी। बड़ी मुश्किल से वह बोल पाया–''क्या बताऊँ चाची! अभी तो एडवांस नहीं दे पाऊँगा। दस–पंद्रह दिन का और मोहलत दे दें तो एडवांस दे दूँगा। तबतक मुझे तनख्वाह भी मिल जाएगा। मिला–जुलाकर पैसे पूरा दूँगा।''

इतना सुनना था कि बुढ़िया का मिजाज एकबारगी उखड़ गया। तमककर बोलीं–''आखिर तेरी बात–जात का कोई वेल्यू है या नहीं। अगर इस तरह अपनी बात से मुकरता रहा तो कोलकाता क्या, कहीं भी तुझे ठौर–ठिकाना नहीं मिलेगा। लोग धक्के मारकर तुझे निकाल देंगे।''

''बात सही है चाची! लेकिन क्या करूँ, मैं खुद धोखा खा गया। नहीं तो ऐसी तकलीफ क्यों देता?जिस आदमी ने मुझे पैसे देने का भरोसा दिया था, उसके बाबूजी बीमार पड़ गये। अब तो मैं उसे कुछ कह भी नहीं सकता। जब कोई खुद मुसीबत में फँसा हो तो वह दूसरे की मुसीबत को क्या देखेगा?''

विपिन को लगा कि उसकी मुसीबत को जानकर मकान मालकिन पसीज जाएगी और उसे दस–पंद्रह दिनों की मोहलत मिल जाएगी। लेकिन क्रूर मिजाज की वह बुढ़िया जरा भी नहीं पसीजी। अपने पैसले से टस–से–मस नहीं हुई। आखिर उसने अपने मन की कर ही डाली। नाक–मुँह सिकोड़ते वह अकड़कर बोली–''मैं नहीं जानती कौन बीमार है और कौन मर रहा है। मुझे तो एडवांस चाहिए। चाहे जहाँ से दो, जैसे दो। मैं और मोहलत नहीं दे सकती। आज किसी का बाप बीमार है, तो कल उसका भाई बीमार पड़ेगा। मैं किस–किस का ठेका लेती फिरूँ?मुझे किसी से क्या मतलब?''

विपिन की पत्नी मीनू ने भी उनसे खूब मिन्नत की–''चाची! एक बार मेरी बात भी मान लीजिए। पंद्रह दिन का ना सही दस दिन की ही मोहलत दे दीजिए। कोई–न–कोई इंतजाम कर ही लेंगे। अभी निकलकर भला कहाँ जायेंगे?अभी तो मेरा कोई ठौर–ठिकाना भी नहीं है, कहाँ शरण मिलेगी?मैं आपके आगे हाथ जोड़ती हूँ। कुछ तो दया कीजिए चाची! बड़ी मेहरबानी होगी।''

उसके आगे गिड़गिड़ाते हुए मीनू रो पड़ी। मगर उस पत्थर दिल बुढ़िया पर उसके आरजू–मिन्नत का कोई असर नहीं हुआ। वह अपने निर्णय पर अडिग रही। उसने बिना कोई मोहलत दिये अपना फरमान जारी कर दिया–''अगर एडवांस नहीं दे सकते तो आज ही कमरे खाली कर दो। दूसरे किरायेदार हमें मिल जायेंगे।''

विपिन का दिल धक् से रह गया। देखते ही देखते चेहरा आँसू से तर हो गये। अब तो उसे हर हाल में कमरा खाली करना ही होगा। किरायेदार ही था, मकान मालिक तो नहीं, कैसे अपना रौब झाड़ सकता है। उसे तो मकान मालकिन का फरमान मानना ही होगा। इसके साथ ही वह मायूस होकर कमरा खाली करने में जुट गया।

लघुकथा

पहले खुद सुधरे

नीरज त्यागी
गाजियाबाद, उ.प्र.
9582488698

अंकुर बड़ी तेजी से अपने घर की तरफ अपनी कार को दौड़ाता हुआ जा रहा था, पता नहीं उसके मोबाईल पर घर से क्या खबर आई और वह अचानक अपने ऑफिस से निकला और घर पहुँचने की जल्दी में कार को तेजी से दौड़ाया।

घर पहुँचकर अपने पिता को अस्पताल की ओर तेजी से ले चला। पूरे रास्ते अपनी माँ और पिता से लड़ता रहा। मम्मी मैं पापा को कितने समय से समझा रहा हूँ कि सिगरेट और शराब छोड़ दे, लेकिन ये मानते ही नहीं, सारा काम–धाम डिस्टर्ब हो जाता है।

हॉस्पिटल पहुँचकर अंकुर के पिता के सारे टेस्ट हुए और टेस्टों के बाद पाया गया कि उन्हें अब बाईपास सर्जरी की जरूरत है। अंकुर इस बात से बहुत परेशान था। घर का इकलौता बेटा होने के कारण अब पिताजी की देखरेख के लिए उसे हॉस्पिटल में रुकना पड़ेगा।

जिसकी वजह से उसके काम में काफी दिक्कत आएगी। पिता का बाईपास कराने के बाद डॉक्टर उन्हें आई.सी.यू में ले गये। अंकुर के पिता अब ठीक हैं। शाम को जब अंकुर के ऑफिस के मित्र उससे मिलने के लिए आए, तो अंकुर उन्हें लेकर बाहर आया और बोला यार बहुत ही परेशानी महसूस कर रहा हूँ, आओ चलो कहीं चलकर ड्रिंक लेते हैं।

अंकुर के ऑफिस के साथियों में से एक साथी बोला–यार तुम किस मुँह से अपने पिता को समझाते हो। जिस काम के लिए तुम उन्हें मना करते हो रोज शाम को, उसी काम को खुद करने बैठ जाते हो। अंकुर अपने मित्र की यह बात सुनकर स्तब्ध रह गया और उसके पास कोई भी जवाब नहीं बना।

कहानी

लातिन, अमेरिकी कहानी: गैब्रियल गार्सिया मार्खेज

रोशनी पानी जैसी है

अनुवादक–सुशांत सुप्रिय
वैभवखंड इंदिरपुरम्, गाजियाबाद
8512070086

बड़ा दिन आने पर लड़कों ने एक बार फिर चप्पूवाली नाव की माँग की।

ठीक है, उनके पिता ने कहा, 'जब हम वापस कार्तागेना लौटेंगे, तो हम वह नाव खरीद लेंगे।' लेकिन नौ वर्ष का तोतो और सात वर्ष का जोएल उससे ज्यादा दृढ़ निश्चयवाले थे, जितना उनके माता–पिता उन्हें समझते थे।

नहीं, उन्होंने एक स्वर से कहा। यह नाव हमें यहीं और अभी चाहिए।'

देखो, उनकी माँ बोली, 'यहाँ नाव खेने के लिए अगर पानी कहीं मौजूद है, तो वह केवल गुसलखाने में ही है।'

माँ और पिता, दोनों सही थे। कार्तागेना दे इंडियास में मौजूद उनके घर में बड़ा–सा आहाता था और खाड़ी के किनारे गोदी थी और वहा एक छप्पर था, जहाँ दो बड़ी नावें रखी जा सकती थीं। दूसरी ओर यहाँ मैड्रिड में वे 47 पैसे ओ दे ला कास्तेलीना की बहुमंजिली इमारत की पाँचवीं मंजिल पर ठुँसे हुए थे। लेकिन अंत में माता–पिता अपने बच्चों को इन्कार नहीं कर सके; क्योंकि उन्होंने बच्चों से वादा किया था कि वे उन्हें षष्ठक और दिक्सूचक यंत्र समेत चप्पूवाली नाव खरीदकर देंगे, यदि उन्होंने प्राथमिक स्कूल की अपनी कक्षा में पुरस्कार जीते और वे दोनों ऐसा कर चुके थे। इसलिए उनके पिता ने उन्हें सब कुछ खरीद कर दे दिया और अपनी पत्नी से कुछ नहीं कहा, जो जुए का कर्ज चुकाने के लिए उससे अधिक अनिच्छुक थी। वह एलुमिनियम की एक सुंदर नाव थी, जिसके पानी के निशानवाली जगह पर एक सुनहरी धारी बनी हुई थी।

'नाव गैरेज में है, दोपहर के भोजन के समय उनके पिता ने घोषणा की।' समस्या यह है कि नाव को किसी भी तरह लिफ्ट या सीढ़ियों से ऊपर नहीं लाया जा सकता और गैरेज मं भी नाव को रखने भर जगह ही है।

लेकिन अगले सोमवार की दोपहर बच्चों ने अपने सहपाठियों को घर पर बुलाया, ताकि वे सीढ़ियों से नाव को ऊपर ला सकें और वे सब नाव को नौकरानी के कमरे तक लाने में सफल हुए।

'बधाई हो, उनके पिता ने कहा, लेकिन अब आगे क्या करोगे?'

'कुछ नहीं। हम तो नाव को केवल कमरे में लाना चाहते थे और वह कमरे में आ गयी है।'

हर बुधवार की तरह इस बुधवार की रात भी माता–पिता फिल्म देखने चले गये। लड़के अब घर के मालिक थे। उन्होंने घर के सारे खिड़की–दरवाजे बंद कर दिये और शयन–कक्ष में लगे एक चमकते बल्ब को तोड़ दिया। टूटे हुए बल्ब में से पानी की तरह ठंढी सुनहरी रोशनी की धारा निकलने लगी। लड़कों ने पानी जैसी उस रोशनी को कमरे में तीन फीट की गहराई तकभर जाने दिया। फिर उन्होंने बिजली बंद कर दी। अपनी चप्पू वाली नाव निकाली और कमरे में मौजूद घरेलू सामानों के द्वीपों के बीच अपनी नाव खेने लगे।

यह शानदार रोमांच मेरी उस क्षुद्र टिप्पणी का नतीजा था, जो मैंने 'घरेलू सामानों के कवित्व' विषय पर आयोजित एक गोष्ठी के दौरान की थी। तोतो ने मुझसे पूछा कि स्विच दबाते ही बिजली कैसे जल जाती है और मुझमें इस प्रश्न पर गहन विचार करने की हिम्मत नहीं थी।

'बिजली की रोशनी पानी जैसी है, मैंने जवाब दिया। आप नल खोलते हैं और वह बाहर आने लगती है।'

और इस तरह दोनों लड़के हर बुधवार की रात अपने घर के कमरे में पानी बिजली की रोशनी में अपनी नाव खेते रहते। वे षष्ठक और दिक्सूचक–यंत्र का इस्तेमाल करना भी सीख गये। जब उनके माता–पिता घर लौटते तो वे लड़कों को सूखी जमीन पर देवदूतों की तरह सोया हुए पाते। कई महीनों के बाद लड़कों की इच्छा हुई कि वे और आगे जाएँ। इसलिए उन्होंने अपने माता–पिता से गोताखोरी की पोशाकों और उपकरणों की माँग भी कर दी–नकाब, मीनपक्ष, टंकी और हवा के दबाववाली राइफलें।

'एक तो यह बुरा है कि तुमलोगों ने चप्पूवाली नाव को नौकरानी के कमरे में रख दिया है, जिसका इस्तेमाल तुमलोग नहीं कर सकते, उनके पिता ने कहा। इस स्थिति को और बुरा बनाते हुए अब तुम गोताखोरी के उपकरण भी माँग रहे हो।'

'यदि हम अपनी वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान पर आए, तब तो आप हमें यह सब खरीद देंगे?' जोएल ने कहा।

'नहीं, उनकी माँ ने चौंककर बोली, बस बहुत हो गया।' किन्तु उनके पिता ने हठी होने पर माँ को फटकारा।

जब इन्हें कोई दिया गया काम करना होता है तो ये लड़के कोई छोटी–सी कील तक नहीं जीत पाते, माँ ने कहा, लेकिन इन्हें जो चाहिए, उसे प्राप्त करने के लिए ये दोनों कुछ भी करने में समर्थ हैं। यहाँ तक कि ये शिक्षक की कुर्सी भी हथिया सकते हैं।

अंत में माता–पिता ने बच्चों की माँग पर न हाँ कहा, न नहीं। लेकिन जुलाई में तोतो और जोएल दोनों की परीक्षा में अच्छे अंक लाने पर 'गोल्ड गार्डेनिया' पुरस्कार मिला और स्कूल के प्रधानाचार्य से सार्वजनिक सम्मान भी प्राप्त हुआ। बिना दोबारा माँग किये उसी दोपहर दोनों लड़कों को अपने शयनकक्ष में गोताखोरी के सारे उपकरण अपनी मूल बँधाई में प्राप्त हो गये। इसलिए अगले बुधवार की रात जब उनके माता–पिता 'लास्ट टैंगो इन पेरिस' नामक फिल्म देखने गए हुए थे, दोनों बच्चों ने पूरी तरह घर में बारह फीट की गहराई तक पानी जैसी बिजली की रोशनी भर ली। फिर वे रोशनी के समुद्र में पालतू शार्क मछलियों की तरह मेज–कुर्सियों और पलंग के नीचे गोताखोरी करने लगे। इस गोताखारी के दौरान उन्होंने कमरे के तल से कई ऐसी चीजें खोज निकालीं, जो बरसों से अंधेरे में खोई हुई थी।

वर्ष के अंत में स्कूल में हुए पुरस्कार वितरण समारोह में सर्वोत्कृष्टता के उदाहरण के रूप में दोनों भाइयों का अभिनंदन किया गया तथा उन्हें श्रेष्ठता के प्रमाणपत्र प्रदान किये गये। इस बार उन्हें किसी चीज के लिए माँग नहीं करनी पड़ी; क्योंकि खुद उनके माता–पिता ने उनसे पूछा कि अब उन्हें क्या चाहिए। वे दोनों इतने समझदार और संतुलित थे कि उन्होंने अपने घर पर केवल अपने सहपाठियों को खिलाने के लिए प्रीति–भोज का आयोजन करने की इच्छा व्यक्त की।

अकेले में उनकी मम्मी के साथ उनके पिता बेहद उल्लसित थे।'यह उनकी परिपक्वता का उदाहरण है, पिता ने कहा।' 'हाँ, आपने कही और ईश्वर ने सुनी, माँ बोली।'

अगले बुधवार जब बच्चों के माता–पिता 'द बैट्ल आफ अल्जियर्स' नामक फिल्म देखने गये हुए थे, पैसे ओ दे ला कास्तेलैना के इलाके से गुजर रहे लोगों ने पेड़ों के बीच छिपी एक पुरानी इमारत के भीतर से रोशनी का प्रपात

बहता देखा। वह रोशनी छज्जों में से उफनकर प्रचंड प्रवाह के रूप में इमारत के अग्रभाग के नीचे से आ रही थी और उस पूरे इलाके में रोशनी की सुनहरी बाढ़ लाते हुए तीव्रगति से बहकर ग्वादर्रामा तक जा रही थी।

इस आपात स्थिति से निबटने के लिए दमकल कर्मचारियों ने उस इमारत की पाँचवीं मंजिल के मकान के दरवाजे को तोड़ डाला और तब उन्हें उस पूरे फ्लैट में फर्श से लेकर छत की ऊँचाई तक भरी हुई चमकती रोशनी दिखी। बाहरवाले कमरे में रखा सोफा और तेंदुए के खाल से ढँकी आराम–कुर्सियाँ, कमरे में अलग–अलग ऊँचाइयों पर पानी जैसी रोशनी में उतरा रहे थे। पास में ही शराब की बोतलें और मनीला–शॉल से ढँका भव्य पियानो भी किसी आधी डूबी फड़फड़ाती मांता–रे मछली की तरह तिर–उतरा रहे थे। घर में रखी चीजों में से जैसे कवित्व फूट रहा था और वे भी रसोई के आकाश में जैसे उड़ान भर रही थी। माँ के मछलीघर से मुक्त हो गई, चटख रंग की मछलियों के बीच ही लड़कों द्वारा नाचने के समय बजाए जानेवाले साज भी बह रहे थे। चमकती रोशनी के उस अपार दलदल में केवल मछलियाँ ही जीवित और प्रसन्नचित्त जीव लग रही थी। गुसलखाने में सबके दाँत साफ करनेवाले ब्रश तैर रहे थे। वहीं पिता के कंडोम, वायलिन की अतिरिक्त मेरू और डिब्बे में रखी माँ की क्रीम भी उतरा रही थी। शयनकक्ष में रखा हुआ टेलिविजन भी एक ओर झुककर पानी जैसी रोशनी में उतरा रहा था। टी.वी. अब भी चल रहा था, जिसमें केवल वयस्कों के लिए दिखाई जानेवाली मध्यरात्रिकालीन फिल्म अब भी देखी जा सकती थी।

बड़े कमरे के अंत में गोताखोरी के सारे उपक्रम लगाकर तोतो अपनी नाव के दुम्बाल में बैठा हुआ हुआ था। उसने अपने हाथों में चप्पू पकड़ा हुआ था, चेहरे पर नकाब लगाया हुआ था और वह पानी जैसी रोशनी की धारा के साथ आगे बढ़ रहा था। वह नावों को रास्ता दिखानेवाले तेज रोशनीवाले बुर्ज की तलाश कर रहा था। नाव की ग़लही में बैठा उसका भाई जोएल अभी भी अपने षष्ठक से ध्रुवतारे को ढूँढ़ रहा था। दोनों भाइयों के सैंतीस सहपाठी भी पूरे मकान में तिर–उतरा रहे थे। वे सब मस्ती में थे और उस पूरे पल को अमरत्व प्रदान करते हुए वे जेरेनियम के गमले में पेशाब कर रहे थे, प्रधानाचार्य की खिल्ली उड़ाते हुए स्कूल के गीत के शब्द बदलकर गा रहे थे और दोनों भाइयों के पिता की शराब की बोतलों में से शराब चुराकर पी रहे थे। उन्होंने एक ही समय में मकान में इतने बल्ब जला लिये थे कि वहाँ रोशनी की बाढ़ आ गई थी और 47 पैसे ओ दे ला कैस्तेलीना की पाँचवीं मंजिल पर स्थित सेंट जूलियन स्कूल की दो प्राथमिक कक्षाएँ उस रोशनी की बाढ़ में डूब गयी थीं। सुदूर स्थित स्पेन की राजधानी मैड्रिड तीव्र गर्मी और बर्फीली हवाओं वाला शहर था। यहाँ कोई नदी या समुद्र नहीं था। चारों ओर से जमीन से घिरे यहाँ के देशज लोगों ने पानी जैसी रोशनी में नाव चलाने में महारत हासिल नहीं की थी।

कविता

ठग

तनुजा उप्रेति
देहरादुन, उत्तराखण्ड
मो. : 9411511887

वह ठग है निरा ठग
तुम्हारे विचारों को कभी
मुक्त ही नहीं होने देता
उसके बुने हुए 'ब्रह्मजाल' से
तुम छूट ही नहीं पाते
उसकी गढ़ी हुई 'ग्रहजाल' से
क्यों! क्यों नहीं होते तुम मुक्त
धर्म की शेष सभी बातों से तो
कभी के मुक्त हो चुके हो
अब घर के पूजास्थल का दीपक
तुम नहीं जलाते
धोती नहीं पहनते, संध्या–पूजन नहीं करते
रामायण, गीता नहीं पढ़ते
और भी बहुत सारी चीजें नहीं करते
तो उससे भी मुक्त क्यों नहीं हो जाते
जन्म के समय की अशुद्धि का निवारण
प्रथम सूर्य दर्शन
तुम्हारा विवाह हो सके बस इसलिए
उपनयन संस्कार की औपचारिकता
विवाह संस्कार की तमाम वाध्यताएँ
तुम्हारा तो मरना भी उसका मुखापेक्षी है
वह न हो अथी भी
घर से निकलने को मना कर दे
जीवन में तनाव हो तुम बीमार पड़ जाओ
तो तुम्हारे ग्रह भी उसी के हाथों शांत होते हैं
स्मरण रहे वह कभी स्वयं तुमसे
प्रार्थना करने नहीं जाता
तुम जाते हो उसके द्वार हाथ जोड़े हुए
एक हजार की पिज्जा खिलानेवाला
तुम्हें ठग नहीं लगता
दो हजार की लिपस्टिक, तीन हजार की कमीज
मात्र एक वर्ष साथ देनेवाला
हजारों का मोबाईल
और भी न जाने क्या–क्या
तुम सब कुछ खरीदते हो, तुमसे
उगाहे जानेवाले लाभ को जानते हुए भी
बिना शिकायत के खरीदते हो
और जिसके दरवाजे तुम स्वयं जाते हो
उसके हाथों अपने संस्कारों को पूर्ण करवाने
अपने विघ्नों के विनाश की आशा में
उसे ही दक्षिणा देते समय
तुम्हें सौ–सौ का हिसाब याद आने लगता है
यहद वह ठग है तो साहस करो
और मुक्त हो जाओ
बिना संस्कारों के जीना और मरना सीख जाओ
ग्रहों के भय और श्रद्धा दोनों से मुक्त हो जाओ
और उसे भी मुक्त कर दो
विश्वास रखो यह भूखा नहीं मरेगा
उसकी संतानें भी नयी राहें ढूँढ़ लेंगी
यह प्रगति भी आजाद हो जाएगी
तुम्हें स्वर्ग का मार्ग दिखाने के दायित्व
की बाध्यता से
और यदि तुम तुक्त नहीं हो सकते
तो छोड़ दो यह मिथ्या कथन कि
वह ठग है.....ठगता है।

रिपोर्ट

अंगजनपद के सांस्कृतिक महाप्राण हरिलाल कुंज

10 जून, 2019 जयन्ती पर :

दयानन्द जायसवाल

बहुआयामी प्रतिथा अंगजनपद के सांस्कृतिक महाप्राण श्रीहरिलाल कुंज का जन्म, गरीबी के घोर अंधकार में भागलपुर (बिहार) के आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पथ, स्टेशन चौक अवस्थित एक खपड़ेल मकान में 10 जून, 1921 ई. की मध्य रात्रि रोहिणी नक्षत्र में उस समय हुआ, जिस समय द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण का कंस की कालगृह में हुआ थ। माँ का नाम नारायणी देवी और पिता श्री तुलसी लाल थे। सात बेटियों के बाद आठवीं संतान के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के बाल सुलभ रूप में हरि को पाकर माँ की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। पर विधाता के आगे भला किसका चल पाया है?हरिकुंज जब मात्र चार–पाँच माह के थे, तभी उनके सर से पिता का साया उठ गया। अचानक माँ नारायणी पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा। अब तो विधवा माँ का आँचल ही उनके दुख–सुख का छाँव बन चुका था। दस वर्ष की उम्र तक उन्हें मामूली कपड़े भी पहनने को नसीब नहीं थे। जूता या चप्पल पहनना तो बहुत दूर की बात थी।

हरिकुंज की आरंभिक शिक्षा भागलपुर के ही नया बाजार स्थित तेजनारायण जुबली (अब बनैली) कॉलेजिएट स्कूल में हुई। तब वहाँ के प्रधानाचार्य, छायावाद की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के विद्वान् पिताश्री गोविन्द प्रसाद वर्मा थे और क्लास टीचर थे रससिद्ध कवि पंडित रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र'। उस समय हरिकुंजजी के संबंध में शायद ही किसी ने कल्पना की होगी कि अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से राष्ट्रीय ख्याति के साहित्यकार राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर', बंगला साहित्य के मूर्धन्य कथा शिल्पी वनफूल, प्रेमचंद युगीन कथाकार तारकेश्वर प्रसाद 'दादा', बाबा नागार्जुन, दक्षिण भारतीय हिन्दीसेवी संत साहित्यकार आनंदशंकर माधवन, हंस कुमार तिवारी, कोकिल कंठी देवी शकुन्तला गोस्वामी, रामचरितमानस के विद्वान् पंडित इन्दूभषण गोस्वामी आदि के बीच मोतियों के हार के मध्य मणि बनकर भागलपुर की धरती को सांस्कृतिक स्वर्ग बनाने में सिद्धहस्त कहलाएँगे।

गरीबी के बीच हरिकुंज का कारवाँ चलता रहा, तभी तो गरीबों ने उन्हें बचपन से ही संवेदनशील बनने में मदद की। मात्र तेरह–चौदह वर्ष की अवस्था में आपने एक साथ कई संस्थाओं को जन्म दिया। मसलन–श्रीगौरांग संकीर्तन समिति, हिन्दी यात्रा पार्टी, वागीश्वरी संगीतालय और चित्रशाला। भागलपुर के खलीफाबाग चौक पर वैभावपूर्ण 'चित्रशाला' को देखकर कौन कहेगा कि यह उस हरिकुंज जी का जीवंत रूप है, जिनके बचपन ने कभी वैभव नहीं देखा। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि लोग अब इसे 'चित्रशाला चौक' भी कहने लगे हैं।

हरिकुंज एक सफल चित्रकार, फोटोग्राफर, फिल्मकार, अभिनेता, रंगकर्मी, गायक, संगीतकार, वादक के साथ–साथ सधे हुए नाटककार, कवि–कथाकार के अलावा एक अति आकर्षक मृदुभाषी सामाजिक इन्सान भी थे। इन्होंने कई नाटक, कहानियाँ, संस्मरण गीत एवं भजन भी लिखे हैं। नाटकों में–चंगेज खाँ, बाबरी मीरा, विद्रोही संथाल, राजलक्ष्मी और पुरस्कार प्रमुख हैं। कहानियाँ–अन्ना, पारो दीदी, तीन पीर, प्रेत फोटोग्राफर आदि। गीत में–''मेरे नयनों के पानी, अभी मत छोड़ मुझे तू प्राण'' और ''जुदाई कैसी होती है।'' अन्य कृतियों में–ब्रजोन्माद, मीराबाई, आधुनिक भजन–एक–दो के अलावा समसामयिक आध्यात्मिक जगत् को समर्पित पत्रिका 'सत्यसंग' का प्रकाशन–सम्पादन। बाल्यकाल से ही हरिकुंजजी का सरोकार अध्यात्म, साहित्य, कला एवं सांस्कृतिक जगत् के अनेक सिद्धपुरुष से रहा है। जिनमें गोस्वामी श्री बिन्टूजी महाराज, पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, बाबा नागार्जुन, अनूपलाल मंडल, फनीश्वरनाथ रेणु, आनंदशंकर माधवन, पंडित राधेश्याम पाठक, पद्मश्री उपेन्द्र महारथी, नटराज पृथ्वीराज कपूर, अभिनेता अशोक कुमार, समीर कुमार, रामधारी सिंह 'दिनकर', वनफूल, महावीर दास एम.पी., प्रसिद्ध तबला वादक किशन महाराज, गोदई महाराज, सितारा देवी, डॉ. केदारराम गुप्त, डॉ. राधाकृष्ण सहाय, डॉ. बेचन, पूर्व केन्द्रीय मंत्री एवं बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री भागवत झा आजाद प्रमुख हैं। वाराणसी के पंडित विजय शंकर चतुर्वेदी को इन्होंने 'बाल व्यास' का नाम दिया, तो प्रसिद्ध रामायणी मानस कोकिला कृष्णा मिश्रा को न सिर्फ अंगजनपद में ससम्मान स्थापित किया, बल्कि एक अभिभावक के रूप में खड़े रहकर उनका भागलपुर में विवाह सम्पन्न भी करवाया।

छात्र जीवन से ही हरिकुंज यात्राभिनय से काफी प्रभावित थे, तभी तो आपने अपनी एक 'हिन्दी यात्रा पार्टी' का गठन किया था, जिसमें आप बतौर लेखक–निर्देशक और अभिनेता के रूप में कार्य भी करते थे। इसमें इतनी प्रसिद्धि मिली कि नेपाल के राजदरबार–हॉल में भी इन्हें यात्राभिनय हेतु आमंत्रण मिला था और आप वहाँ जाकर सफलतापूर्वक अभिनय कर अति सम्मानित हुए।

फोटोग्राफर कला और व्यवसाय को हरिजी ने काफी ऊँचाई प्रदान करते हुए इस पेशे में कुछ बेरोजगारों को जोड़कर उन्हें सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत करने की राह दिखाई। फोटो–पेंटिंग कार्य में 'स्प्रे प्रणाली' का प्रयोग कर उसकी शुरुआत की तथा सर्वप्रथम 'सिनेमा स्लाइड' का निर्माण भी किया।

हरिकुंज जी एक सफल संगीतकार होने के नाते हारमोनियम, तबला, ढोलक, नाल, चाँदखोल, सितार, झाल, कलार्नेट तो घंटों तक बजाते। वायलिन तो जैसे उनका प्राण ही था, जिसे बड़े चाव और आत्मीयता से बजाते थे। भजन गाते–गाते वे भाव विह्वल हो जाते, जिसका प्रभाव श्रोताओं पर दिखे बिना नहीं रह पाता।

इसी प्रकार कला–साहित्य की खुशबू बिखरते–बिखरते 13 फरवरी, 1984 की रात 9 बजे जयप्रभापथ, भागलपुर स्थित निवास 'सीता निकेत' में अपनी आँखें मूँद लीं।

जीवनी

राजमहल का लाल

डॉ. पंकज साहा

डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा
प्राध्यापक हिन्दी विभाग
खड़गपुर कॉलेज, इन्दा खड़गपुर
पश्चिम मेदिनीपुर (प.बं.)
मो. 9434153501

संताल परगना प्रमंडल के साहेबगंज जिले के अंतर्गत राजमहल एक अनुमंडल है। कभी बंगाल, बिहार और उड़ीसा के संयुक्त प्रांत की राजधानी बननेवाले इस शहर ने आज भी अपनी ऐतिहासिक विरासत को सँजोकर रखा है। इसी शहर में आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के नाना सेठ अमीचंद का मकान था। कहते हैं कि भारतेन्दु बाबू अपने कुछ मित्रों के साथ अक्सर राजमहल आते थे। उनके चचेरे भाई श्रीगोविंदचंद अग्रवाल सुकवि थे। उनसे भारतेन्दु की खूब पटती थी। उन दिनों जो साहित्यिक चर्चा होती थी, उनके बीजकण उस क्षेत्र में निश्चित रूप से फैल गये थे, जो बाद में अनुकूल समय पाकर पौधे के रूप में अंकुरित, विकसित एवं फूल की तरह प्रस्फुटित हुए। उनमें से एक नाम है–डॉ. पंकज साहा।

डॉ. पंकज साहा का जन्म राजमहल के कासिम बाजार महल्ले में 2 जनवरी, 1959 को हुआ था। इन्होंने जे.के. उच्च विद्यालय राजमहल में विज्ञान विषय लेकर मैट्रिक की परीक्षा पास की। जब वे दसवीं कक्षा में थे, तब पहली बार उनकी एक जातीय पत्रिका 'शौंडिक' में उनकी रचना छपी। साहित्य का बीजारोपण हो चुका था, पर उसका प्रस्फुटन देवघर में हुआ। उनके पिता सरकारी सेवा में थे और उनका स्थानांतरण राजमहल से देवघर हो गया था। देवघर कॉलेज में साहाजी ने विज्ञान विषय लेकर आई.एससी. में प्रवेश लिया। देवघर के साहित्यिक माहौल ने डॉ. साहा के साहित्यिक रुझान को गति दी। देवघर के प्रसिद्ध गीतकार स्व. रामशंकर मिश्र 'पंकज', साहित्यकार डॉ. शंकरमोहन झा, पत्रकार श्रीदुर्गाचरण खवाड़े आदि के सान्निध्य में रहकर इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा को विकसित किया। इनके अलावा हिन्दी–विद्यापीठ देवघर में होनेवाले दीक्षांत समारोहों में अजेय जी, विद्यानिवास मिश्रजी, विजेन्द्रनारायण सिंहजी, गंगाशरण सिंहजी, नवलकिशोर गॉडजी जैसे हिन्दी के बड़े कवि–लेखकों को सुनने एवं उनसे मिलने का सुअवसर इन्हें मिला। सद्भावना यात्रा में आये बंगाल के सुप्रसिद्ध कथाकार श्रीविमल मित्र एवं दक्षिण भारत के दो प्रसिद्ध लेखकों से मिलने, उनसे बातचीत करने से इनका आत्मविश्वास बढ़ा। उन दिनों देवघर के आर. मित्रा विद्यालय में प्रायः कवि गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। विद्यालय के प्राचार्य स्व. राधाकृष्ण राय अत्यन्त साहित्यानुरागी थे। अपने विद्यालय में बड़े–बड़े कवियों को भी बुला लेते थे। काका हाथरसी, वीरेन्द्र तरुण एवं अन्य बड़े कवियों को देखने–सुनने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। इसी बीच हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं जैसे सन्मार्ग, बालक, बालभारती, योजना, माधुरी आदि में इनकी रचनाएँ छपने लगीं। आरंभ में वे विभा पंकज के नाम से लिखते थे। बाद में रामशंकर मिश्र 'पंकज' के एक कॉमेंट के कारण इन्होंने अपना नाम पंकज आनंद रख लिया। देवघर में यही नाम ज्यादा चर्चित हुआ। पंकज की माँ बंगालिन थी, सो घर में सब बांग्ला बोलते थे, कॉलेज में ये शुद्ध विज्ञान पढ़ते थे और प्रायः रोज शाम में किसी–न–किसी साहित्यकार, विशेषकर रामशंकर मिश्र 'पंकज' के साथ साहित्य–चर्चा में होते थे।

विज्ञान विषयों में रुचि न होने के कारण एवं आई.एससी. में अच्छे अंक न आने के कारण इन्होंने अपनी मर्जी से स्नातक हिन्दी ऑनर्स में प्रवेश ले लिया। पिताजी बहुत नाराज हुए। उनकी इच्छा थी कि उनका यह बेटा इंजीनियर बने। इस बेटे से उन्हें काफी उम्मीदें थीं, पर हिन्दी पढ़कर कुछ हासिल होनेवाला नहीं है। परन्तु पंकजजी ने हिन्दी में अच्छे अंकों से एम.ए. किया। पीएच.डी. की और हिन्दी व्याख्याता के रूप में नियुक्त भी हुए। हिन्दी के प्रति आभार जताते हुए उन्होंने एक अत्यन्त रोचक लेख लिखा–'मुझे हिन्दी–प्रेम ने बिगाड़ा' जो 'हंस' के जुलाई, 2010 अंक में प्रकाशित एवं अत्यन्त चर्चित हुआ था।

कॉलेज–जीवन में ही साहाजी ने हाइकुएँ लिखनी शुरू कर दी थीं। उस समय सारे देश में हाइकू के दो ही पत्र अंतर्देशीय पत्र के रूप में छपते थे। उनमें एक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली के जापानी विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. सत्यभूषण वर्मा के संपादन में छपता था दूसरा रीवा (म.प्र.) से प्रो. आदित्यप्रताप सिंह के संपादन में। दोनों में साहाजी की हाइकुएँ छपती थीं। उन्हीं दिनों रीवा विश्वविद्यालय से हाइकू पर एक शोधकार्य में डॉ. साहा की कुछ हाइकुएँ उद्धृत की गई थीं।

बी.ए. एवं एम.ए. (हिन्दी) करने के दौरान साहाजी की सौ से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छप चुकी थीं। कुछ पत्रिकाओं के नाम हैं–योजना, कुरुक्षेत्र, नवनीत, कादंबिनी, दिनमान, बनफूल इत्यादि। कॉलेज–जीवन छोड़ने के बाद से ही ये अपने वास्तविक नाम से लिखने लगे थे।

भागलपुर विश्वविद्यालय से इन्होंने एम.ए. एवं पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इनके शोध का विषय है–'साठोत्तरी हिन्दी कहानी में जनवादी चेतना'। इनके शोध निर्देशक थे–डॉ. राजेन्द्र पंजियार।

एम.ए. करने के बाद 1983 ई. में इनकी नियुक्ति बी.एल.एन. बोहरा कॉलेज, राजमहल में हिन्दी व्याख्याता पद पर हो गयी। 1992 ई. में पश्चिम बंगाल कॉलेज सेवा आयोग द्वारा इनकी नियुक्ति खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर (प.बं.) में व्याख्याता पद पर हुई। क्रमशः पदोन्नति पाते हुए ये संप्रति इसी कॉलेज में एसोसिएट प्रोफेसर पद पर हैं। इसके अलावा विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर में अतिथि प्राध्यापक भी हैं। अभी हाल में मॉरिशस में हुए 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में एक वक्ता के रूप में आपने अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

अभी तक आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं–1. साठोत्तरी हिन्दी कहानी में जनवादी चेतना, 2. समाज और संस्कृति की एकता : हिन्दी एवं हिन्दीतर भाषाओं की भूमिका, 3. हिन्दी उपन्यास में किसान। 'राष्ट्रभाषा हिन्दी संग्रह' नामक एक पाठ्य–पुस्तक का संपादन भी इन्होंने किया है। इनकी तीन पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं।

राजमहल से इन्होंने 'जन जागृति' नामक एक पाक्षिक पत्र का संपादन भी किया था। देश की अनेक स्तरीय पत्र– पत्रिकाओं में इनके अनेक लेख, कहानियाँ, लघुकथाएँ, व्यंग्य कविताएँ आदि प्रकाशित हैं।

इनके निर्देशन में 'प्रेमचंद और नागार्जुन के उपन्यासों में नारी विमर्श : एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधकार्य सम्पन्न हो चुका है। इनके अलावा विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोध–परीक्षक भी ये रह चुके हैं।

इनकी साहित्यिक साधना को देखते हुए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली ने इन्हें दो बार 'हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक पुरस्कार योजना' का मूल्यांकन कर्ता बनाया है। 'बृहत् हिन्दी साहित्यकार संदर्भ कोश' में हिन्दी साहित्यकार के रूप में इनका नाम एवं परिचय भी दर्ज किया गया है।

खड़गपुर में लोकप्रिय एवं विद्यार्थियों में अत्यन्त प्रिय हिन्दी शिक्षक के रूप में इनकी पहचान है। स्वभाव से सरल, मृदुभाषी 'राजमहल का यह

व्यंग्य

लॉबी की ओर

डॉ. अनुज प्रभात
दीनदयाल चौक, फारबिसगंज
अररिया
मो.–8797671020

कवि सम्मेलन का दृश्यमंच पर कवियों का जमावड़ा कभी फुसफुसाते तो कभी वाह–वाह! करते। कवि उवाच : में अज्ञान दास जी महाराज का नाम पुकारा जाता है। वे अपने कलफदार कुर्ते को सीधा करते हुए उठते हैं... तालियाँ बजती हैं, मगर आवाज में दम नहीं। दम भी कैसे हो, श्रोता का पंडाल जो आधे से अधिक खाली है। और जो लोग हैं, वे पंडाल की कुर्सियों पर ऊँघते, नींद लेते से...सतपुरा के जंगल से।

खैर अज्ञानदासजी महाराज अपनी कविता की पंक्ति सस्वर पढ़ते हैं, फिर दुहरा–दुहरा कर अपने साथ आये कवियों की ओर देखते हैं, खासकर लाल बुझक्कर की ओर। वह ऊँघता हाता है। महाराज जी की कविता समाप्त होती है, दूसरे कवि मंच पर आते हैं। महाराजजी स्थान बना लाल बूझक्कर के पास जा बैठते हैं और उसके कान में फुसफुसाते हैं–''क्यों रे! तुमने मेरी कविता पर तो वाह–वाह! नहीं किया, मगर बछड़ेनाथ पर बहुत वाहवाही दिखाई!

जवाब में उसने कहा–''आपकी कविता के समय झपकी आ गई थी और उनकी कविता पर झपकी तोड़ आँख रगड़–रगड़ वाह–वाह करना पड़ा। आखिर वे भी मुझे कवि सम्मेलन में न्योता आने पर साथ ले चलते हैं, सो फर्ज निभाना जरूरी था।'' लेकिन अप्रत्यक्ष मन ही मन कहा–''एक ही तरह की सुनते–सुनते बोर हो गया हूँ। बछड़ेनाथ जी क्या...बेधड़क जी क्या...?सभी लॉबी वाले रिपीट कास्ट ही करते हैं।''

अज्ञानदासजी महाराज को बुरा लगता है। वे चिढ़े स्वर में कहते हैं–''ठीक है तो आगे से उन्हीं की लॉबी में शामिल हो जाना। हम तो ठहरे छंदवाले और वे छंदमुक्त। मुक्तछंद क्या... प्रगतिवादी, आधुनिक, तुकान्त, अतुकान्त सभी लॉबी वाले 'नाथजी' के साथ चले जाना, बड़का कवि बना देंगे।''

लाल बूझक्कर, मामला गड़बड़ होता देख, उनके चरण छूते हुए कहा–''इस बार माफ कर दीजिए महाराजजी! अरे, आपकी लॉबी से बढ़कर कोई है?कोशिश करके थक गये, लेकिन आपकी पूछ बरकरार है। आगे से दीदे मसल–मसल, पानी के छींटे मार–मार आँखें खुली रखूँगा। बस, अब गुस्सा थूक दीजिए।'' पर मन ही मन कहा–''जमाना कहाँ से कहाँ चला गया है और आप हैं कि पुरानी लीक को पकड़े बैठे हैं। हमें भी आज के साथ चलना है। देखते नहीं गालिब, इकबाल, फैज, मजाज आदि की बातें अब कम, दुष्यन्त कुमार, फ़िराक, नीदा, नीरज, प्रसून की अधिक करते। अब तो चाँद को गोरी के चेहरों में और सावन को उनकी जुल्फों में अधिक तलाशते हैं। गोया कि पुरातन प्रकृति ने आधुनिकता की चादर ओढ़ ली है।''

तभी शोर होता है...वह आ गई...वह आ गई...चलो, चलो...वह आ गई है। लोग भागते हैं, पंडाल खाली हो जाता है। यहाँ तक आयोजक से कार्यकर्ताओं तक भाग खड़े होते हैं। फिर बंगाल के कॉलेज ओडिटोरियम से आवाज गूँजती है, डी.जे.के साथ महिला स्वर में...मुन्नी बदनाम हुई डार्लिंग तेरे लिए...।

लाल बूझक्कर मंच पर बैठे कवियों की ओर देखता है और कूदकर दौड़ता हुआ पहुँच जाता है ओडिटोरियम। वहाँ मॉडर्न स्टाइल में डांस चल रहा होता है....शीला की जवानी....चिपकाले सैंया आदि। वह डांस लॉबी का हिस्सा बन जाता है। डी.जे. की धुन सभी डांस में मस्त... वह भूल जाता है कवि लॉबी को। बाद इसके जब वह बाहर निकलता है, तो स्वयं में बड़बड़ता है–''भाँड़ में जाये छंद और मुक्त छंद। चलो बेटा! लाल बूझक्कर वाइ पास से मॉडर्न लॉबी की ओर।''

गीतें

संवेदना

पीया मिलन की घड़ियाँ रे

शहीद मेजर की पत्नी निकिता की संवेदना

ओढ़े तिरंगा पीया, घर आये
पीया मिलन की, घड़ियाँ रे

जी भर देखूँ, नय जुड़ा लूँ
मुख चूम लूँ, मन भर सैयाँ रे
पीया मिलन की घड़ियाँ रे
पीया मिलन की घड़ियाँ रे

पलकें बिछ्याये, राह निहारें
द्वार पे ठारी, दुल्हनीयाँ रे
किस बैरन की नजर लगी
यह कैसी निंगोड़ी अँखिया रे
पीया मिलन की घड़ियाँ रे

बीते पल की, याद में सजनां
बीतेगी मेरी, दिन–रतियाँ रे
पल पल, छन छन, याद में तेरी
याद आयेगी, सारी बतियाँ रे
पीया मिलन की घड़ियाँ रे

आई लव यू मेरे प्रीतम प्यारे,
जय हिन्द कहती, सजनियाँ रे
अँखियन बरसे, सावन भादों
सैल्यूट करती, दुल्हनियाँ रे
पीया मिलन की घड़ियाँ रे।

लक्ष्मी नारायण मधुलक्ष्मी
भीखनपुर, भागलपुर
9006903826

श्याम गये परदेश

श्याम गये परदेश
रे कागा! पहुँचा दे संदेश
लिख–लिख पतियाँ, हार गई मैं
तबहु ना सुधि मेरो लेत
रे कागा! पहुँचा दे संदेश
श्याम सुन्दर की साँवली सूरतिया
अँखियन तरसे देखे
रे कागा! पहुँच दे संदेश
श्याम बिना घर आँगन सूना
सूना लागे मेरो दो
रे कागा! पहुँचा दे संदेश
परदेशी संग नेहा लगाया
किस मछलियाँ से नैना लड़ाया
मधुलक्ष्मी सुधि ना लेत
रे कागा! पहुँचा दे संदेश।

कविताएँ

शब्द

डॉ. मंजरी पांडेय
बरईपुर, वाराणसी
मो.–9307488087

शब्द के सामर्थ्य से
संदर्भ गर्भित हो गये
छंद बंध अनुबंध से
सद्भाव पूरित हो गए

भाव के आधार पर
उद्गार विकसित हो गये
ज़िंदगी के रंग लेकर
चित्र निर्मित हो गए।

मोह माया जाल में
जबसे ये गुंफित हो गए
देखते ही देखते एक
दिन वो चर्चित हो गए

सूर्य के आलोक में
लोक हर्षित हो गए
देव आराधन में कितने
पुष्प अर्पित हो गए

शील संयम संस्कार के
बीज जिसमें बो गए
वक्त के आँवे में जल
वो ही समर्पित हो गए।

कजरी (गीत)

बरसन लागै मेघ झमाझम
सरसन लागै नेह अँगन
ताकै झाँकै चमकै बिजुरिया
बदरा नाचन लागै मगन

टपटप चूवन लागी मड़इया
जियरा डोलैं जइसे नइया
जागत बीत गई सारी रतिया
खतम पर हुई नहीं ये बतियाँ
सर से सरक गई पयजनिया
नयनन डोलन लागै सपन, बरसन...

ठंढी बहन लगी पवनइया
झर से झुरकै ई सवनइया
सर से भींजै मोर चुनरिया
देहियाँ रेंगै लागी लहरिया
चढ़ गईं हम अपनी अटरिया
मनवा दहकन लागै अगन, बरसन...

गाँव घर गूँजै गीत गवनइया
बीते उमिर गई लड़कइयाँ
सोभै बरखा कै फवहरिया
मन में सूरत एक सँवरिया
कँगना डोलै मोरी कलइया
बिंदिया माथे लागी सजन। बरसन..

कृष्ण मोहन सिन्हा 'किसलय'
भागलपुर
मो. 8051491801

मैं हूँ आज का भिखारी

वह आया
दरवाजे पर चिल्लाया
हरे राम!
निकला दरवाजे पै देखा
एक भिखारी था
पके छोटे बाल, क्लीन सेभ्ड गाल
कड़ी लग रही थी
देह की माटी
जबरन पकड़े था वह लाठी
ठीक–ठाक था कद–काठी
अच्छा खासा था, पर था भिखारी
होगी कोई लाचारी
एक सिक्का मैंने जेब से निकाला
था ज्यों ही कटोर में डालनेवाला
सिक्का देख भिखारी गुर्राया
गुस्साया भनभनाते हुए शायद
बहुत कुछ बोल गया
लगा मेरी हस्ती तौल गया
इससे क्या होगा भला
इससे काम नहीं चलता है खर्चे
खर्चे बहुत हैं, भत्ता बढ़ाओ
कम से कम सौ के नोट लाओ
जीते हो आज, दिमाग में कल पलता है
एक सिक्के में अब कहाँ कुछ मिलता है
बनकर देखो भिखारी
दर्द कितना है भारी
जान लो! मैं हूँ आज का भिखारी।

कहानी

सीतिया माय

डॉ. विद्या रानी
शैलबाग, अलीगंज, भागलपुर
9430259755

घरों के पिछुवाड़ी में कुइयाँ छेलै, तेकरे बगलों में एकटा डीह, गिरलों-पड़लों केन्हौं करी कें एक ठो कोठरी बचलों छेलै। असकरी बुढ़िया लोगों-वेदों कन टहल करी कें खाय छेलै। गामों के लोग-वेद बुढ़िया सें कामो करवाय लै छेलै आरो ओकरा आँखी केरों बातरियो कहै छेलै। हेन्हो कें गाम-देहातों में बुढ़िया-सुढ़िया कें डायने कही दै छै। से ओकरो सें सब डरै छेलै।

मोहनमा आपनों मुनमां-टुनमां कें लै कें जखनी भी हुन्नें सें जाय छेलै, तखनिये सिखावै छेलै, "हे रे नूनू, हुन्नें नै ताकियों, बुढ़िया देखी लेतौं तें नजरैये देतौ, आरो जों बुढ़िया देखिये लौ तें की पढ़वें, जैसें नजर नै लागें, बोल रे नुनुमां।" मुनुमां बोलें लागै, "कारों कबूतर, उजरों पाँख, जे नै देखें डायनी के आँख, जै कामरू कामाख्या।"

मोहनमां खु ा होय गेलै, "देखल्हें, एकरा कत्तें याद रहै छै, तोरा याद छौ रे टुनमां ?" टुनमां छोटका छेलै, कहलकै, "नै बाबू, मुनमां जे पढ़तै नी, हम्मू संगे पढ़ी लेवै।"

गजब बुद्धि छेलै मोहनमा के, कि ई मंतर जे पढ़ी लेतै, ओकरा कुछ नै बिगाड़ें सकतै बुढ़ियां, नै तें सौंसे निगली जैतै, एहनों छै खलबल डायन।

बुढ़िया बेचारी की डायनपनों करती, साँझे खाय छै तें भोरे नै, भोरे खाय छै तें सांझकों फिकिर। लोग-वेद कोय नगीच नै आवै छै। दुरहे रहै में आपनों भलाय बूझै छै। समय केरों फेर छेकै, कहाँ सबकें पियारों लागै छेली, कहाँ दुतकारलों जाय छै आबें। यहाँ तक कि आपनों बेटा-पुतोहो नै गुदाने छै, कैन्हें कि छुच्छा कें के पुच्छा। एतना उमिर होल्हौ पर बुढ़ियां कभी आंग नै चुरावै छै। खट् टी-खट् टी कें दिन काटै छै। बुलैला पर केकरो कन रांधि एल्हौं, बरी पारी ऐल्हौं, देखलकौं कि कोय नै छै तें राती में सुत्हो लें चल्ली गेलौं। यहें रँ दिन कटलों जाय छै। जेकरा सिनी काम करवैनें छै, ओकरो सिनी डरवे करै छै। मजकि लाचारो छै, कहै छै, "की करियै भाय, कोय नै मिलै छै, आखिर में बुढ़िये कें बुलावै लें पड़ै छै। आँखी केरों जत्तें बातरी-तातरी रहें, काम तें करिये दै छै नी। फेनू सामना-सामनी तें बाघो नै निगलै छै।"

बुढ़िया के बड़की बेटी के नाम छेलै–सीता, से बूढ़ों-पुरानों लोग ओकरा सीतिया माय कहै छेलै। चार बेटी आरो एक बेटा के रहत्हौं बुढ़िया के दिन एन्हे कटै छेलै। कोय आपना पास राखै लें नै चाहै छेलै, एगो बेटा कें छोड़ी कें। बेटवां कहै छेलै, "माय, चल हमरा कन" मतरकि पुतोहिया के लटकलों मुँह देखी कें बुढ़ियां मन नै बनावै छेलै, "की जानलियै–केना कें राखतियै वहाँ लै जाय कें। एकटा कोठरी में आपनों सिंगार करै लें बैठती आरू हमरा भनसिया। ई नै होतै, मरवै तें यहीं आपनों डीहों पर मरवै। तोहें वहाँ खिलावें पारै छें आरो यहाँ नै भेजें पारै छें। जतना होतौ, ओतन्हें भेजियें, समझलें की नै।" आरो दोसरों बात यहू छेलै कि बुढ़िया होय गेली छेलै चटोर, एकटा घरों में रहवों ओकरा लें बड़ी जबूर बुझावै छेलै, जबें तांय चार घरों के तरकारी नै खैलकौं, तबें तांय मोने नै भरै। गामों के कोनो लोग जों कुच्छू बोललकों, तें सौंसे गाम में पढ़ावै के काम बुढ़िया के छेकै। झुकलों कमर, सन रँ के ा, जेन्हों-तेन्हों साड़ी, फटर-फटर चप्पल, सौंसे गाम घुरी जाय छै। अन्हरियो में एकरा डोंर नै लागै छै, हद छै।

एक दिन बुढ़िया हटिया जाय रहली छेलै कि मोहना भेंटी गेलै। पुछलकै, "की सीतिया माय, की करै छें आयकल?" सीतिया माय बोलली, "अरे मोहना, की करवों, यहें भगतों कन रान्हे छियौ, असकरे नी छै ऊा कोय्यो नै रहै छै। हम्में तें खेर गरीब छियै, हौ धनवानों कें देखें, आयकल की हाल छै।" बुढ़िया कौआ रँ कांव-कांव करतें रहै छै। "हम्मीं करी कें दै छियै तें खाय छै, नै तें कुत्तो नै पूछै।" सोचें लागलै मोहना–आरो तोरों की हाल छै। चलनी दूसलकों सूपों कें, जेकरा में आपने बहत्तर ठो भुरकी।

सीतिया माय बोललकी, "की सोचें लागलें मोहन। ई दुनियां में कोय नै छै केकरो। ई पापी पेट जे छै, एकर् है भरै लें सब खटै छै, आरो एकरा तें चाहियों दिनों में तीन-तीन दाव।" बुढ़िया आगू बोलले, "जेन्हों भगवान रों मरजी, जौंने धारतै, वहीं करतै। इखनी तें सब्भें हमरा डायने कहै छै, आरो काम पड़ै छै तें हमर् है बुलावै छै घुरी-फुरी। हमरा खटी कें खाय में की लाज। हम्में होय गेलियौ छुट् टा। कोय चाहतै कि जोरी कें राखौं तें होतै की ?हमरों बेटां हमरा लै जैतै तें की करतै। दोनों जीव जैतै डूटी करै लें आरो हम्में घरजोगनी। रहों महलों में तें करों टहल। एकरा सें तें यहीं बढ़ियां छी, गाँव-समाज छै, सब्भे मिली-जुली कें रहै छी, की रे मोहना।"

मोहना तें डरी गेले–अगे माय, ई बुढ़िया तें यहो जानै छै, जों हमरों बेटवा सिनी कही देलकै कि हमरों बाबुओ तोरा डायने कहै छौं, तबें की सोचतै ई बुढ़ियां। परगट में मोहना बोलले, "ठिक्के कहै छें, जेना भगवान कटावौ, मतरकि आबें तोरा कहूं थिर जांती कें रहना चाहियों, ई रँ रहे में अच्छा तें नहिये लगै छै।"

सीतिया माय नें जवाब देलकी, "आबें अच्छा लगौ कि खराब, हम्में तें यहें रँ रहवै।"

मोहना 'कारों कबूतर उजरों पांख'.....बड़बड़ैलों घरों दि ा जावें लागलै। "हे ब्रह्मा महाराज, ई बुढ़िया के बुद्धि पर बैठी जैइयौ,

हमरों घरों दि ा नै ताकें।'' कतनो बात करी लै छै मोहना, मतरकि डेनी वाला बात भूलै नै छै। दुरयोग हेनों कि ओकरों ऐंगन सें जों निकलों तें दू रस्ता तें बुढ़िया के घरे दे कें पड़े छै–एगो आगू सें, आरो दोसरों पिछुवाड़ी सें। जानें कतना-कतना देवी-देवता कें मनावै छै मोहना, आतमा ओकरों थर-थर करै छै तें कहै छै–भोला नाथ हमरों रच्छा करियौ। हुन्नें बुढ़िया के आतमा मोहना तरफ सें साफ छै। वैं सोचै छै कि सौंसे गाँव में जे हमरों दिशों सें कोय्यो कुच्छू बोलतै तें ई मोहने हमरे तरफों सें बोलतै। हुन्नें मुनमां-टुनमां कें हेनों शिक्षा देलों गेलों छै कि बुढ़िया कें देखलकों कि पताल खेललकों। कथी लें रुकतों एक्को मिनिट, लगें दरबर, लगें दरबर–सीधे मैय्ये के पास। बुढ़िया ध्यान नै दे छेलै, सोचै छेलै–बच्चा छै, खेलै-धूपै छै, हमरा की। कि एक दिन नरुआ के टाली पर मुनमां-टुनमां चढ़ी कें दोनों खेलै छेलै। मुनमां टुनमां कें रटावै छेलै, ''कारों कबूतर, उजरों पांख..... '' रधिया नीचू सें सुनलकै, पूछलकै ''मुनमां, कोंन फेंकड़ा पढ़ाय रहलों छैं टुनमा कें'' तें मुनमां बोललै, कि डायन बुढ़िया कें देखला पर यही पढ़ला सें कुछुओ नै होतै। रधिया पूछें लागली कि के छेकै डायन रे मुनमा, तें मुनमां बोललै, ''तोंय नै जानै छैं रधिया, यहें सीतिया माय जे छौ नी, वहें छेकौ, बाबू कहै छै।'' सीतिया माय हुन्नें कन्हौ धान फटकी रहलों छेलै, से सुनी लेलकै। सुनी कें छटपटाय गेली बुढ़िया। ''हाय रे करम, सपन्हौ में नै सोचलें छेलिये कि ई मोहनो हमरा डायन कहतें होतै, तभिये तें ई छौड़ा सिनी हमरा देखी कें पताल खेलै छै। अरे, सब्भे गरीब असहाय ही डायने कैन्हें होय जाय छै रे। ई नाम तें खड़े-खड़ लोगों के जात लेलें छै। हम्में की निपुत्तर-निहंग छी, आंय, हमरा बेटा रे, बेटी रे, घर रे, दुवार रे, हम्में केकरों बापों कें खैलियौ रे, जे डायन कहे छैं'' मने-मन कुहरै छै सीतिया माय, ''सच्चे में जों बेटा पास चल्ली गेलों होतियौं तें ई कलंक तें नै लगतिये। ई मोहना कत्तें सुसरमुहां छै, हाँ में हों बतियैतौं आरो छौड़ा सिनी कें सिखैतौं कि ई बुढ़िया डायन छै'' सीतिया माय सोची लेलकी कि अबकी पासकाट लिखवाय देवै बेटा कें कि आवी कें लै जो–ई कटी टा जन्त सिनी हमरा डायन कहै छै, हे भगवान, कन्नें जाय कें मरी जांव।

हुन्नें रधिया दौड़ली मोहना के पास गेली, आरो कहें लागली, ''हे हो कक्का, टुनमां-मुनमां टाली पर बेठी कें कही रहलों छेल्हौं कि बुढ़िया सीतिया माय डायन छै–ई बाबू बतैलें छै, यही सब। 'कारों कबूतर, उजरों पांख.....' रटै छेल्हौं आरो हुन्नें बुढ़िया धान काटै छेलै, जरूरे सुनलें होतौं।'' सुनत्हैं मोहना तें सन्न रही गेलै, ''हे भगवान ई छौड़ा सिनी जात लेतै, बुढ़िया गुस्सैतै तें की होतै, हे भवानी।'' दौड़लों गेलों टाली पर आरो चिकरें लागलै, ''मुनमां-टुनमां हिन्नें आव, दोनों भाय नीचें उतर, तोरा सिनी कें आरो कुच्छू काम नै छौ जे दिन-रात खेलत्हैं रहे छैं। जों, घर जो।''

बुढ़ियां सुनलकी तें कहें लागली, ''काम कैन्हें नी छै, जेन्हों शिक्षा देलें छैं, होन्हे पढ़े छौ। के सिखैलें छै–कारों कबूतर, उजरों पांख..... तोंही नी ?वही रटै छौ।'' मोहना के थोथनों तें एकदम्में फक्क रही गेलै। ''सुनों हे सीतिया माय, ऊ मंतर तें हम्में बच्चा-बुतरू कें यै लेली सिखैलें छी कि नजर-गुजर नै लागें। ई भूत सिनी तें एकदम्में बकलोले छै।'' मोहना बात कें झांपै-तोपै वास्तें बोललै। सुनत्हैं बुढ़िया के मगज आरो चढ़िये तें गेलै, बोललीं, ''मोहना ऊ सब बकलोल छै कि नै, ई तें छोड़, तोहें हमरा बकलोल नै समझें। एत्तें मीट्ठों-मीट्ठों बोलै छेलै रे, आरू तहूं हमरा डाइने कहे छैं।'' कहतें-कहतें बुढ़िया के आँखी में लोर आवी गेलै, जेकरा पोंछतें ऊ आगू कहें लागली, '' नै रहवौ रे मोहना ई गांव में, चल्ली जैवौ, आपनों बेटा तें नै नी कहतै–डायन छै।'' सुनत्हैं मोहनो के मौंन भरी ऐलै, ओकरों आँखी सें पानी चुऍ लागलै, बोललै, ''नै सीतिया माय हेन्हों नै कहों।'' मजकि बुढ़िया के लहर नै शान्त भेलै, कहलकी, ''बस आबें कुछ नै बोलें तें अच्छा।'' आरो बुढ़िया उल्टे पाँव विन्डोवों नाँखी लौटी गेलों छेली

ग़ज़ल

साथी सुरेश
गनगनिया
भागलपुर
9430259755

देखो कत्ते ँ छै परिंदा दुनिया मँ
पर्यावरण के खातिर जिन्दा दुनिया मँ

चहकी –चहकी फैलावै आनन्द–ध्वनि
बाँटै छै खुशी के पुलिंदा दुनिया मँ

जेकरा छै कुछ सरोकार दोसरा सँ
कुछ बचलो ँ छै लोग चुनिन्दा दुनिया मँ

हक मारी कऽ जीयै छै जे दोसरा के
ओकरे खूब हुयै छै निन्दा दुनिया मँ

करि घोटाला शेखी खूब बघारै छै
तनियो सन छै नै शर्मिन्दा दुनिया मँ

गो–पालन जे करि रहल छै यहाँ–वहाँ
कत्ते ँ छै बनलो ँ गोविन्दा दुनिया मँ

जे रखलो ँ छै सैंती कऽ गोदामों मँ
ओकरें कारण भाव छै मन्दा दुनिया मँ

'साथी' कहवौं तऽ उकरू लगवे करथों
जमाखोर बेकारे जिन्दा दुनिया मँ।

महर्षि मेंहीं गाथा

हीरा प्रसाद 'हरेन्द्र'
सुलतानगंज, भागलपुर
मो. 9931854246

धरती पर छै स्वर्ग सरीखे, सुन्दर भारत देश
अनेकता मँ एकों केरों हरदम दै संदेश

स्वच्छ–धवल तुषार सँ मंडित, नगपति पहरेदार
भारतवासी के लेली छै, सच्चा प्राणाधार

संस्कृति भारत देशों के छै, अनुकरणीय अनन्त
यै संस्कृति मँ पलै देश के, ज्ञानी ऋषि–मुनि–संत

धन्य–धन्य छै हमरों भारत, धन्य यहाँ के लोग
सब्भै केरों हृदय–पटल पर, स्नेह–शांति–तप–योग

राम–कृष्ण के ई धरती पर, संतन केरों बास
भक्तो गण सब धर्म धुरन्धर, सब मँ हर्ष उल्लास

याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि यहाँ पर, कबीर, तुलसी, सुर
रामतीर्थ शुकदेव हृदय मँ, महावीर मशहूर।

नारद, शंकर, जनक संत जी, वशिष्ठ, दधीचि व्या
नानक रामानंद कहाबें, भक्त शिरोमणि खास

बसै विवेकानंद जहाँ पर, भारत छै अनमोल
साधु–संत केरों बोली मँ, छै मिश्री के घोल

भारत के उत्तरी भाग मँ, अंग क्षेत्र विख्यात
दानी कर्ण जहाँ के राजा, चर्चा छै दिन–रात

सुलतानगंज शहर अंग के, देशा–विदेशों नाम
जहाँ बहै छै उत्तरवाहिनी, गंगा आठो याम

उ गंगा के बीच धार मँ, अजगैबी के धाम
अजगैबी बाबा मेटै छै, असाध्य रोग तमाम

मधुसूदन मंदार बसै छै, महिमा अगम अपार
समुद्र मंथन मँ देवों के , करने छै उपकार

अंग क्षेत्र उत्तर तरफों मँ, गेलों छै नेपाल
दक्षिण दिशा बाबा धामों तक, छिरियैलों छै जाल

किउल नदी तक पश्चिम तरफें, सबकें छै मालूम
उधवा नाला एक पूरब मँ, अंग–बंग के धूम

यै अंगों मँ एको पर छै, एक संत के वास
जौनें बाँटै संसारों मँ, उज्ज्वल परम प्रकाश

ऊपर लिखलों नाम संत के, वहें कड़ी के रूप
महर्षि मेंहीं बाबा छेलै, जग मँ परम अनूप

नगर रेशमी भागलपुर मँ, आश्रम एक विराट
घर–घर, बच्चा–बच्चा जानै, ऊ छै कुप्पाघाट

कुप्पाघाटों के संन्यासी, महर्षि मेंहीं दास
लेथैं जिनकों नाम अखनियों, मेटै छै भय त्रास

परम संत मेंहीं बाबा के, परमोज्ज्वल व्यक्तित्व
संत समाजों मँ छैलों छै, गौरवमयी कृतित्व

महापुरुष के जीवन गाथा, अनुपम अनुकरणीय
जीवन–शैली, मार्ग बितैलों, हरदम अनुसरणीय

नर–लीला खातिर अवतारी, महापुरुष कॅ रोग
भूख–प्यास, भय–त्रास सताबै, भेद न लागै लोग

लीला तें लीला ही होतै, खाक पकड़तै कोय
सीता खोजों मँ प्रभु भटकै, कथा हमेशा ढोय

माँटी खेतें देख यशोदा, मारै लें तैयार
मुँह खोली कें दिखलाबै छै, मुख मँ ही संसार

अका–बका सुर मारी–मारी, मेटै जग परिताप
कागासुर, नागासुर देखी, करै बाप रे बाप

ईश्वर के पेटों मँ पीड़ा, के पतियैतै भाय
मनमोहन तें नारद कें भी, देने छै चकराय

उद्धव जी के ज्ञान मिलावै, माँटी मँ यदुराय
राधा जी केरों आगू मँ, बोलै शीश झुकाय

बानासुर के अभिमानों कें, करै कृष्ण विध्वंस
अनिरुद्ध–उषा के मिलन कहो, असुर संग यदुवंश

औघड़दानी केरों महिमा, कौनें करै बखान
भस्मासुर कें भय सँ भागै, दौड़ै कृपानिधान

रूप मोहिनी तुरत बनाबै, करुणा के अवतार
भस्मासुर कें भस्म करे के, कथा ज्ञात संसार

भला करै लें दुनिया भर के, मेटै लें भू भार
ऐलै मेंहीं ई धरती पर, भक्तन के हिय हार

जन्म–मरण सँ दूर हमेशा, संतन के अवतार
महर्षि मेंहीं केरों देखों, आगू जीवन सार।

गीत

गोरी पुनिया पनिहारिन गुजरिया हो राम,
छीटै गगरी सें दूधिया इन्जोरिया हो राम ।
झूलै झुलवा झुलैल, खनु मारै पिलाँच,
खेलै नया-नया खेल खनु भैर कुलाँच,
केला गब्भा रं पिन्ही चुनरिया हो राम ।
खोजै झरबेरी हार खनु तोड़ै कटेल,
कजरंखी नयना सें मारै छै गुलेल,
करै खमखम है कसमस उमरिया हो राम ।
घुमै नदिया रों पार, दौड़ै पोखर-पहाड़,
चुनै फूल हरसिंगार, गूँथै हार कचनार,
तोड़ी कामिनी सें साजै सेजरिया हो राम ।
चाल मस्तानी देखि झूमै छै गगन,
छुवै लें चाहै जेन्हें पुरवा बदन,
झट ओढ़ी कें भागै बदरिया हो राम ।
लचकै कमर कि जेना किरची-कमान,
सिसवा के खेत खनु भागै धाने-धान,
जन्नें भागै, हुन्नै गमकै डगरिया हो राम ।
रूप-दीप में नित जरै छै अनल,
राख झड़ि-झड़ि बनै कविता-गजल,
रोज चित-पट पर कूट अहुरिया हो राम ।

–राम शर्मा 'अनल'
भागलपुर

रस्सा-कस्सी

चुप्पी पसरलों छै सौंसे टा गाँव
धिरुआ के गड़लों छै धरती में पाँव
बछिया के डोरी महाजनें खीचै छै
घरनी के आँखी में लोर छै
मुँहों में साड़ी के कोर छै ।
चार डेग धिरुआ आगू बढ़ै छै
सतजुग सें कलजुग तक कुहरी जियै छै
बछिया के पीठी पें हाथों कें फेरै छै
सिल्ला रं पीठ तनी बछिया के तनलों छै
दाँतों सें दाबलों ठोर छै
घरनी के आँखी में लोर छै ।
आमों के गाछी पें चिन्हा चिहावै छै
निट् ठे मुँह कोयली कें गारी सुनावै छै
पिरुआ के आँखी में ललका सुरुज छै
बाबा के घामों के ढहलों गरुर छै
सोचै छै नादें गुमसुम बथानी पें
आभियो की बाबू नीभोर छै ?

अनिल शंकर झा
देवघर

सिलसिला

ई एक सिलसिला छेकै–
ाब्दों के;
एक लम्बा,
नै खतम होय वाला बहसों के
जे–
नै जानों कहिया सें चली रहलों छै
लेकिन खत्म नै होय छै ।
ई खाई,
ई दूरी,
जेकरा हम्में सब्भैं मिली कें
बनैनें छियै;
के एकरा भरतै ?
यहाँ तें
इन्कलाब में उठै वाला गर्दन कें
बर्बरीक बनाय देसों जाय छै !

अनिरुद्ध प्रसाद विमल
पुनसिया, बांका

गांधीजी के गाय

गांधीजी के गाय
खूब दूहों हो भाय
खुट् टा में बान्ही कें
गोड़ दोनों छानी कें
दहौ चुक्का लगाय ।
खूब पीयो ँ ऐंठी कें
कुर्सी पर बैठी कें
लाठी देखाय दीहों
भागतै सी. बी. आय. ।
दिल्ली में पीयों
बनारस में पीयों
हजार बरस जीयों
तों लाख बरस जीयों
आबें केकरो ँ परवाय ।
जें लेलकै आजादी
दै देलकै जान
भातों लेली कलटै छै
भगत सिंह के माय ।

सम्पर्क : पो०-बौंसी,
जिला : बाँका (बिहार)

प्राणमोहन 'प्राण'
बांका

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303